PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN: 3048-9040 (Online)

कामेंग ई-पत्रिका

KAMENG E-JOURNAL

संस्करण I | अंक II | अक्टूबर 2025 - अप्रैल 2026 | अर्धवार्षिक पत्रिका

कामेंग ई-पत्रिका
Copyright © 2026 by Kameng.in
सहकर्मी समीक्षा जर्नल
(Peer-Reviewed Journal)
All Rights Reserved

सम्पादक- डॉ. अंजु लता

आवरण पृष्ठ
डॉ. बिभूति बिक्रम नाथ

www.kameng.in
Copyright © 2026 - www.kameng.in - All rights reserved

कामेंग ई-पत्रिका / KAMENG E-JOURNAL
संस्करण I | अंक II | अक्टूबर 2025- अप्रैल 2026 | अर्धवार्षिक पत्रिका
PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN: 3048-9040 (Online)

कामेंग ई-पत्रिका

KAMENG E-JOURNAL

संस्करण I | अंक II | अक्टूबर 2025 - अप्रैल 2026 | अर्धवार्षिक पत्रिका

सम्पादक- डॉ. अंजु लता

www.kameng.in

Copyright © 2025 - www.kameng.in - All rights reserved

संस्करण I | अंक II | अक्टूबर 2025 - अप्रैल 2026 | अर्धवार्षिक पत्रिका

कामेंग ई-पत्रिका
KAMENG E-JOURNAL

प्रकाशन आवृत्ति (Publication Frequency): अर्धवार्षिक (Half-Yearly)

आधिकारिक वेबसाइट (Official URL):
https://www.kameng.in/index.php
आधिकारिक ईमेल (Official Email): Kameng.ejournal@gmail.com

लाइसेंस (License):
Creative Commons Attribution-Share Alike 4.0 International License
https://creativecommons.org/licenses/by-sa/4.0/deed.en

कामेंग ई-पत्रिका (Kameng E-Journal)
आईएसएसएन (ISSN): **3048-9040 (ऑनलाइन)**

प्रकाशन भाषा (Publication Language): हिंदी **(Hindi)**
आरंभ वर्ष (Year of Starting): **2024**

समीक्षा प्रकार (Type of Review): सहकर्मी समीक्षा **(Peer Review)**
प्रकाशन का स्वरूप (Nature of Publication): ऑनलाइन **(Online)**

Copyright © 2025 - www.kameng.in - All rights reserved

कामेंग ई-पत्रिका
Copyright © 2025 by Kameng.in
सहकर्मी समीक्षा जर्नल **(Peer-Reviewed Journal)**
All Rights Reserved

इस पत्रिका के किसी भी भाग को पत्रिका की पूर्व लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में या किसी भी माध्यम से पुनरुत्पादित, वितरित या प्रसारित नहीं किया जा सकता है।

No part of this journal may be reproduced, distributed, or transmitted in any form or by any means without the prior written permission of the journal.

ISSN: 3048-9040 (Online)

प्रकाशक: कामेंग प्रकाशन समूह
सम्पादकीय कार्यालय:
कामेंग ई-पत्रिका
कामेंग प्रकाशन समूह
नपाम, तेजपुर, असम

सम्पर्क: anjulata2305@gmail.com
aliyajesmina12@gmail.com
bibhutibikram.nath2.8@gmail.com

वेबसाइट:www.kameng.in

ईमेल: Kameng.ejournal@gmail.com

आवरण पृष्ठ: डॉ. बिभूति बिक्रम नाथ

कामेंग ई-पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं के विचार लेखक के अपने विचार हैं। इससे सम्पादकीय पक्ष का सहमत होना आवश्यक नहीं है। सभी कानूनी विवादों का न्यायिक क्षेत्र तेजपुर जिला न्यायालय, असम के अधीनस्थ होगा।

Copyright © 2025 - www.kameng.in - All rights reserved

कामेंग ई-पत्रिका / KAMENG E-JOURNAL
ISSN: 3048-9040 (Online)
अर्धवार्षिक पत्रिका
Half Yearly Journal
सहकर्मी-समीक्षित साहित्यिक शोध पत्रिका / Peer-Reviewed Literary Journal
Website: https://www.kameng.in/index.php | Email: Kameng.ejournal@gmail.com

सम्पादकीय

जीवन में आस्था - नैतिकता और जिम्मेदारियों का बहुत महत्व होता है। इन सब के लिए व्यक्ति लगातार अपने आस पास के संसाधनों से सहायता लेता है। इन संसाधनों में से साहित्य भी एक माध्यम है जो समाज को एक दिशा प्रदान करने की क्षमता रखता है। एक ऐसे समय में जब पूरे विश्व में युद्ध, हत्याओं और हिंसा का नया इतिहास लिखा जा रहा हो तो व्यक्ति की जिम्मेदारिया बढ़ जाती हैं।

इतिहास साक्षी रहा है कि जब समाज नये परिवर्तनों के दौर से गुजरता है तो साहित्य भी अपनी पक्षधरता निर्मित करता है। इन्हीं तथ्यों के आधार पर कामेंग पत्रिका के संपादन की योजना तैयार की गयी है। पिछले पंद्रह वर्षों से पूर्वोत्तर भारत में काम करने के दौरान यहाँ के समाज और साहित्य के साथ संबंध लगातार गहरा होता चला गया। यहाँ के साहित्य से हिंदी का समाज लगभग अनजान रहा है।

इसी को ध्यान में रखते हुए कामेंग पत्रिका के संपादन की जिम्मेदारी ली गयी है। इस पत्रिका का नाम अरूणांचल की नदी के नाम पर रखा गया इसके पीछे की मंशा सिर्फ इतनी है कि लोग ना सिर्फ यहाँ के साहित्य और समाज से वाकिफ हों वरन् यहाँ की भौगोलिक संरचना को भी जानें।

"निश्चित रूप से यह पत्रिका पूर्वोत्तर भारत के साहित्य समाज के साथ-साथ हिंदी के शोधार्थियों को एक मंच प्रदान करेगा।

"

डॉ. अंजु लता
संपादक, कामेंग ई-पत्रिका

कामेंग ई-पत्रिका / KAMENG E-JOURNAL
ISSN: 3048-9040 (Online)
संस्करण I | अंक II | अक्टूबर 2025 – अप्रैल 2026 | अर्धवार्षिक पत्रिका
Edition I | Issue II | October 2025 – April 2026 | Half Yearly Journal

मिज़ो उपन्यास का विकास और रमबुआई साहित्य

जुदिथ ज़ोपारी[1]
अमिष वर्मा[2]

शोधार्थी[1]
renthleizopari28@gmail.com
हिन्दी विभाग
मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आइज़ोल

असोसिएट प्रोफेसर[2]
amishjnu@gmail.com
हिन्दी विभाग
मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आइज़ोल

This is an open access article under the Copyright (c) 2025 कामेंग ई-पत्रिका

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-Share Alike 4.0 International License.

Page No.: 01- 10

समाज के साथ साहित्य का गहरा संबंध होता है। विश्व के विभिन्न समाजों के साहित्य में पद्य और गद्य विधाओं में लेखन की परंपरा रही है, जिसमें गद्य विधा में उपन्यास को प्रमुख माना जाता है। मिज़ो साहित्य की गद्य विधा के अंतर्गत उपन्यास लेखन की शुरुआत *20*वीं सदी में हुई। अन्य समाजों और भाषाओं के साहित्य के विपरीत, मिज़ो साहित्य के शुरुआती दौर में कहानी और उपन्यास में अधिक अंतर नहीं किया गया था, परंतु मिज़ो साहित्य के इतिहासकार डॉ. के.सी.वानङहाका ने अपनी पुस्तक '*Literature Zungzam'* के तीसरे अध्याय '*Mizo Novel Tobul leh Hmasawn Dan (*मिज़ो उपन्यास का उद्भव और विकास)' में उपन्यास को कहानी से अलग करते हुए 'थोंथू फुअःथर' की संज्ञा दी और बी. ललथङलिआना ने अपनी पुस्तक जिसे मिज़ो साहित्य के इतिहास की पहली पुस्तक माना जाता है '*Ka Lungkham: Introduction to Mizo Literature'* के '*Mizo Novel'* अध्याय में उपन्यास को 'थोंथू सेई' की संज्ञा दी है। हिन्दी और दुनिया की कई दूसरी भाषाओं में उपन्यास का उद्भव *18*वीं-*19*वीं शताब्दी से माना जाता है, परंतु *1893* में मिज़ोरम में ईसाई मिशनरियों के आने और फिर उनके द्वारा मिज़ो भाषा के लिए लिपि तैयार करने के बाद ही मिज़ो साहित्य का लिखित रूप सामने आना शुरू हुआ। ऐसे में मिज़ो साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विधा 'उपन्यास' का जन्म *20*वीं सदी में जाकर हुआ। आगे चलकर मिज़ो उपन्यास के महत्त्व को पहचाना गया और इसे मिज़ो साहित्य के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया।

मिज़ो साहित्य का आरंभिक रूप मौखिक परंपरा में मिलता है, जिसमें लोककथाएँ और गीत शामिल हैं। लेकिन 1893 के बाद ईसाई मिशनरियों द्वारा मिज़ो भाषा के लिए लिपि उपलब्ध कराए जाने के बाद लिखित रूप में भी मिज़ो साहित्य सामने आने लगा। मिज़ो भाषा का पहला उपन्यास 'होइलोउपारी' (एक प्रकार के फूल का मिज़ो

नाम) को माना जाता है जिसे एल. बिआकलिआना ने 1936 में कॉटन कॉलेज, गुवाहाटी से आई.ए. की पढ़ाई करते हुए लिखा था। अतः एल. बिआकलिआना को प्रथम मिज़ो उपन्यासकार माना जाता है। डॉ. के. सी. वानङाका ने इस उपन्यास के बारे में लिखा है-' 'होइलोउपारी' उपन्यास में उपन्यासकार ने मिज़ो संस्कृति के महत्त्वपूर्ण पक्ष 'त्लोमङइह्ना' अर्थात दूसरों की निस्वार्थ सेवा करने के भाव को बहुत ही अच्छे ढंग से चित्रित किया है। इसके साथ ही उपन्यासकार ने माता-पिता की सख्त पाबंदियों से महिलाओं की मुक्ति को भी स्पष्ट रूप से चित्रित किया है और महिलाओं को अपनी पसंद से शादी करने की स्वतंत्रता देने का भी प्रस्ताव रखा है।[i] एल. बिआकलिआना ने ही 1937 में 'लली (ललओमपुई)' नामक कहानी की भी रचना की। 'लली' को लेकर मिज़ो साहित्य के इतिहासकार स्पष्ट नहीं हैं कि इसे कहानी माना जाए या उपन्यास। कहानी होते हुए भी इसे मिज़ो साहित्य में द्वितीय उपन्यास का स्थान दिया जाता है। 'लली' उपन्यास (यदि इसे उपन्यास माना जाए तो) ईसाई प्रेम कहानी है। यह उपन्यास 1939-40 में मिज़ो छात्र संघ द्वारा 'समाज में मिज़ो महिलाओं की स्थिति और भाग्य' विषय पर आयोजित कहानी लेखन प्रतियोगिता के लिए लिखा गया था और इसने प्रथम पुरस्कार जीता था। इस कहानी में शुरुआती मिज़ो युवक-युवतियों के एक-दूसरे के प्रति सच्चे और पवित्र प्रेम, पुराने समय में महिलाओं की निम्न स्थिति, मिज़ो समाज में पितृसत्ता के गहरे प्रभाव आदि को चित्रित किया गया है। लेकिन इसके साथ ही, यह उपन्यास इस बात को भी दर्शाता है कि जो मुश्किल समय और दुःख में भी परमेश्वर पर भरोसा करते हैं, परमेश्वर उनकी हमेशा मदद करता है।[ii] इस प्रकार, मिज़ो साहित्य के प्रारंभिक दो उपन्यास एल. बिआकलिआना द्वारा लिखे गए हैं।

एल. बिआकलिआना के बाद तछीप गाँव के कापह्लेइआ आते हैं, जिन्होंने 1939 में पूर्व और पश्चिम के मिज़ो प्रमुखों के बीच हुए युद्ध में तछीप गाँव के एक युवक द्वारा मार डाली गई रुआनज़ोल गाँव की एक खूबसूरत युवती छीङपुई पर आधारित 'छीङपुई' नामक उपन्यास लिखा। 'छीङपुई' उपन्यास को तीसरा मिज़ो उपन्यास माना जाता है। यह एक ऐतिहासिक उपन्यास होने के साथ-साथ एक रोमांटिक त्रासदी है। उन्होंने 1939 के अंत में अपना दूसरा उपन्यास 'खोङलुङरून' लिखा।[iii] 'खोङलुङरून' उपन्यास एक ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें खोङलुङ गाँव में 1750 में घटित एक ट्रैजिक युद्ध को चित्रित किया गया है। अतः उक्त तीन उपन्यास ही 1940 से पहले लिखे गए उपन्यास थे और इसलिए मिज़ो साहित्य में इन्हें महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। एल. बिआकलिआना और कापह्लेइआ, प्रथम दोनों मिज़ो उपन्यास लेखक खतरनाक बिमारी टी.बी. का शिकार हो गये। कापह्लेइआ की मृत्यु 1940 में और एल. बिआकलिआना की मृत्यु 1941 में हो गई। उनकी असमय मृत्यु और उस समय मिज़ोरम में प्रिंटिंग प्रेस के अभाव के कारण उक्त तीनों उपन्यासों को उनके मरणोपरांत प्रकाशित किया जा सका। शुरुआत में प्रथम तीनों मिज़ो उपन्यास केवल पांडुलिपि के रूप में उपलब्ध थे। 1963 में जे. मलसोमा द्वारा संकलित पुस्तक 'ज़ोउनुन' में 'लली' और 'छीङपुई' उपन्यास को प्रकाशित किया गया और यहीं से लोगों की पहचान इन उपन्यासों से हुई। 1983 में 'होइलोउपारी' उपन्यास को प्रकाशित किया गया।[iv]

तीसरे मिज़ो उपन्यासकार के रूप में 1940-41 के आसपास ललजुईथङा आते हैं जिन्होंने अपने पूर्व लेखकों से अलग फैंटेसीपरक और जासूसी उपन्यास लिखने शुरू किए। 1940-41 में उनके द्वारा लिखे गए उपन्यास *'थ्लशाङ'* (भूत) को चौथा मिज़ो उपन्यास माना जा सकता है। इस उपन्यास को 'घोस्टली फिक्शन'[v] या 'जासूसी उपन्यास'[vi] कहा जा सकता है। उनके अन्य उपन्यास हैं – *'फिरा लेह ङ्रथनपारी', 'चरहुआई इ ह्लाउ लोम नी'(1941)*। अतः इन तीन प्रथम उपन्यासकारों एल. बिआकलिआना, कापह्लेइआ और ललजुईथङा ने प्रारंभिक मिज़ो उपन्यास लेखन की शुरुआत की।

मिज़ो साहित्य के इतिहासकार बी. ललथङलिआना ने अपनी पुस्तक **'Ka Lungkham: Introduction to Mizo Literature'** (जिसे प्रथम मिज़ो इतिहास पुस्तक माना जाता है) में लिखा है कि "जिस तरह अंग्रेजी साहित्य में रिचर्डसन, हेनरी फील्डिंग, लॉरेंस स्टर्न और तोबीयस जी. स्मॉलेट को अंग्रेजी उपन्यास के चार पहिए माना गया

है, उसी प्रकार मिज़ो साहित्य में इन तीन उपन्यासकारों एल. बिआकलिआना, कापह्लेइआ और ललजुईथङा को मिज़ो उपन्यास के तीन पहिए माना जा सकता है।"[vii]

1945 में सी. ठुआमलुआइआ ने *'एङतिन ओम त ज़ेल अङ'* उपन्यास लिखा। इसके साथ ही उन्होंने 'स्यालतोन ऑफिशियल' और 'पु हाङा लेईलेत वेङ' जैसी काल्पनिक लघुकथाएँ भी लिखीं जो पश्चिमी काल्पनिक कथाओं से मिलती जुलती हैं। बर्मा में सेवारत सैन्य अधिकारी कैप्टन चललिआनखूमा (1914-1990) ने 1946 में मिज़ो सैनिक युवक और बर्मा की युवती के बीच के प्रेम पर आधारित उपन्यास 'मेयम्यो सनापुई' लिखा जिसे 1950 में बर्मा लुशाई एसोसिएशन द्वारा प्रकाशित किया गया था। इसे संभवतः सर्वप्रथम प्रकाशित मिज़ो उपन्यास माना जाता है। उन्होंने *'छीङखुआल लुङदी'(1950)* और *'इन इन चु क इन अ नी'(1963)* जैसे उपन्यास भी लिखे। स्वतंत्रता के बाद के युग के अग्रणी मिज़ो कथाकार होने के कारण मिज़ो कथाकारों में कैप्टन चललिआनखूमा का स्थान महत्त्वपूर्ण है। उनके प्रथम उपन्यास के प्रेस में छपे पहले मिज़ो उपन्यास होने के कारण मिज़ो उपन्यासकारों में उनका स्थान ऊँचा माना जाता है।[viii] चूँकि सबसे पहले प्रकाशित मिज़ो उपन्यास 'मेयम्यो सनापुई' का प्रकाशन बर्मा में हुआ था, अतः मिज़ोरम में पुस्तक के रूप में प्रकाशित होने वाला पहला मिज़ो उपन्यास दारह्लीरा द्वारा लिखे गये उपन्यास 'खोलकिल बूङह्नुआई' को माना जाता है। इसे 1971 में लिखा गया था लेकिन इसका प्रकाशन 1975 में किया गया।[ix]

1958 में के.सी.ललवुङा उर्फ ज़ीकपुई पा द्वारा लिखित उनका पहला उपन्यास 'सिल्वरथङी' प्रकाशित हुआ। मिज़ो उपन्यास के विकास में उनका बड़ा योगदान रहा है। वे निबंधकार, कथाकार, आलोचक और कवि थे। उनका साहित्यिक जीवन छियालीस वर्षों से अधिक समय तक चला। मिज़ो साहित्य में उनके योगदान को देखते हुए मिज़ो अकादमी ऑफ लेटर्स ने 1995 में उन्हें अकादमी पुरस्कार (मरणोपरांत) से सम्मानित किया। इसके अलावा उन्हें वर्ष 2000 में मिज़ोरम राज्य सरकार द्वारा शताब्दी के लेखक (राइटर ऑफ द सेंचुरी) से सम्मानित भी किया गया। उनके द्वारा लिखे गये उपन्यास हैं -'क्रॉस बुला चुआन'(1959), 'हॉस्टल ओमतू'(1959), 'सी. सी. कॉइ नं. 27' (1963), 'ललरमलिआना'(1950-1993) और 'नुन्ना कोङ ठूआमपुईआ'(1989)। 'हॉस्टल ओमतू' उपन्यास 1959 में गुवाहाटी में लिखा गया था। इस उपन्यास में हॉरर उपन्यास के कुछ तत्व निहित हैं। नासिक, महाराष्ट्र में रहते हुए ज़ीकपुई पा ने 1963 में 'सी. सी कॉइ नं. 27' उपन्यास लिखा। यह उनकी एक महत्त्वपूर्ण रचना है। 'ललरमलिआना' उपन्यास ज़ीकपुई पा का पहला उपन्यास प्रतीत होता है, लेकिन उनकी पत्नी के माध्यम से यह ज्ञात होता है कि इसे पूरा करने में उन्हें पैंतालीस साल से ज्यादा का समय लगा। 'नुन्ना कोङ ठूआमपुईआ' उपन्यास उनका अंतिम और उनके श्रेष्ठ उपन्यासों में से एक है तथा यह उनकी एक शक्तिशाली कृति है।[x] एक प्रेम कहानी होने के साथ-साथ इस उपन्यास की पृष्ठभूमि में मिज़ो विद्रोह भी है। मिज़ो कथाकारों में ज़ीकपुई पा श्रेष्ठ और प्रतिभाशाली लेखकों में से एक माने जाते हैं।

1965 में वानललरौपुईआ का 'चोङपुई अ ति वोल वोल ठ्रीन' उपन्यास प्रकाशित हुआ जो एक ऐतिहासिक उपन्यास है। यह उपन्यास केवल 38 पृष्ठों का था। 1977 और 1978 के बीच जेम्स दोउखूमा का 'थ्ला ह्लेईङा ज़ान' उपन्यास प्रकाशित हुआ जो 1968 में लिखा गया था जब वे राजनीतिक कारणों से नगाँव जेल और गुवाहाटी डिस्ट्रिक्ट जेल में थे। जेम्स दोउखूमा के प्रमुख उपन्यास हैं– 'खोहर इन'(1970), 'रिनओमीन'(1970), 'तुमपाङ चल ङे साईथङपुई'(1981), ह्माङाई:ना थूचः'(1982), 'इरावदी लूइ कम:'(1982), 'सिलाईमू ङाई:ओम'(1992) और 'खम कार सेनशी'(1995)। साहित्य के क्षेत्र में जेम्स दोउखूमा को लगभग आधा दर्जन पुरस्कार मिले हैं। वे एक निबंधकार, कवि, नाटककार, इतिहासकार, कोशकार एवं कथाकार थे। साहित्य के क्षेत्र में उनके योगदान को न केवल भारत बल्कि विदेशों ने भी मान्यता दी है।[xi]

1970 से 1980 के बीच अधिकतर अंग्रेजी उपन्यासों का मिज़ो अनुवाद साइक्लोस्टाइल में प्रकाशित किया जाता था। 1990 में सी. लाईज़ोना द्वारा लिखित उपन्यास 'ह्माङाइ:ज़ुआली' प्रकाशित हुआ जिसे उसी वर्ष मिज़ो

अकादमी ऑफ लेटर्स ने 'बुक ऑफ द ईयर' से सम्मानित किया। 1991 से 2000 के बीच उपन्यासों का लेखन एवं प्रकाशन अधिक संख्या में हुआ। 2001-2010 के बीच लगभग नब्बे (90) उपन्यासों का प्रकाशन हुआ।[xii]

मिज़ो साहित्य के इतिहास में मिज़ो कथा साहित्य का कोई व्यवस्थित एवं कालानुक्रमिक अध्ययन नहीं किया गया है, लेकिन डॉ. ज़ोरमदिनथरा ने अपनी पुस्तक **'Mizo Fiction: Emergence and Development'** में मिज़ो साहित्य के इतिहास के अंतर्गत मिज़ो कथा के विकास को अध्ययन की सुविधा के लिए तीन खंडों में विभाजित करने का निम्न प्रकार से प्रयास किया है-

1. स्वतंत्रता पूर्व मिज़ो कथा साहित्य: 1936 – 1946
2. स्वातंत्र्योत्तर मिज़ो कथा साहित्य: 1947– 1986
3. आधुनिक मिज़ो कथा साहित्य: 1986 – 2000

1. स्वतंत्रता पूर्व मिज़ो कथा साहित्य: 1936 – 1946

डॉ. ज़ोरमदिनथरा लिखते हैं कि "1936 से 1946 के बीच की अवधि मिज़ो कथा साहित्य के इतिहास में पहली महत्त्वपूर्ण अवधि है। यह 'मिज़ो कथा' नामक एक नयी रचना पद्धति की शुरुआत का प्रतीक है।"[xiii] डॉ. ज़ोरमदिनथरा ने स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "मिज़ोरम में वेल्श मिशनरी के आने के बाद ईसाई धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए कविता और नाटक को एक महत्त्वपूर्ण माध्यम के रूप में प्रयोग किया जाने लगा। यही कारण है कि मिज़ो साहित्य में कथा साहित्य के उद्भव से पहले नाटक और कविता का उद्भव और विकास हुआ।"[xiv] कुछ आगे वे पुनः लिखते हैं- "साहित्यिक दृष्टि से मिज़ो कथा साहित्य की स्थापना इस काल के साहित्यिक इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है। इस काल के बीच की अवधि ने मिज़ो कथा साहित्य के लिए एक नए युग की शुरुआत की है।"[xv] मिज़ो साहित्य के प्रसिद्ध कवि, नाटककार और लेखक लालत्लुआङलिआना खिअङते ने भी इस युग को 'साहित्य में उल्लेखनीय उपलब्धि के लिए मिज़ो साहित्य का स्वर्णिम काल' कहा है। एल. बिआकलिआना, कापह्लेइआ और ललजुईथङा जैसे प्रथम तीन मिज़ो उपन्यासकारों को डॉ. ज़ोरमदिनथरा ने इसी काल के अंतर्गत रखा है, जिन्होंने मिज़ो साहित्य की इस नयी विधा को सामने लाने का काम किया।

2. स्वातंत्र्योत्तर मिज़ो कथा साहित्य: 1947–1986

डॉ. ज़ोरमदिनथरा इस काल की शुरुआत 1947 में भारत की स्वतंत्रता के साथ और इस काल की समाप्ति 1986 में मिज़ोरम शांति समझौते के साथ मानते हैं। इस काल के अंतर्गत 1947 से लेकर 1986 के बीच के कथा साहित्य के विकसित रूप को रेखांकित किया गया है। डॉ. ज़ोरमदिनथरा के अनुसार इस काल के दौरान "द्वितीय विश्व युद्ध, 1966 से 1986 के बीच के मिज़ो विद्रोह और मिज़ो डिस्ट्रिक्ट काउंसिल के लिए केंद्र शासित प्रदेश के प्रावधान जैसी ऐतिहासिक घटनाओं ने मिज़ो लोगों के सामाजिक जीवन को गहराई से प्रभावित किया, जिसके परिणामस्वरूप इस युग का साहित्यिक आंदोलन आगे बढ़ा। साहित्यिक दृष्टिकोण से इन घटनाओं ने मिज़ो कथा साहित्य के विषय में कुछ बदलाव लाए और इस काल के कथाकारों ने युद्ध, विद्रोह और राज्य के राजनीतिक उथल-पुथल के प्रभाव पर जोर दिया। इस युग के मिज़ो उपन्यासों में लेखकों ने युद्ध, विद्रोह और राजनीतिक परिवर्तनों के कारण आने वाली अनेक कठिनाइयों का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया है। अभिव्यक्ति का एक लोकप्रिय माध्यम होने के कारण उपन्यास ने इस काल में सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया। इस युग ने सी. ठुआमलुआइआ, कैप्टन सी. खूमा, के.सी.ललवुङा (ज़ीकपुई पा), रेव. ज़ोउकिमा, जेम्स दोउखूमा, ललएङमोइआ रालते आदि अनेक मिज़ो कथाकारों को जन्म दिया।"[xvi] इसके साथ ही इस युग में महिला कथाकारों जैसे खोलकूङी और के. ललदोङलिआनी ने भी मिज़ो कथा साहित्य में उल्लेखनीय योगदान दिया है।

3. आधुनिक मिज़ो कथा साहित्य: 1986 – 2000

डॉ. ज़ोरमदिनथरा ने अपनी पुस्तक 'Mizo Fiction: Emergence and Development' में लिखा है कि "1987 से 2000 के बीच का काल मिज़ोरम के इतिहास में सबसे उल्लेखनीय कालों में से एक है और यह मिज़ोरम के इतिहास का एक नया अध्याय है।"[xvii] यह सामाजिक परिवर्तन का युग रहा। इस युग के कथाकार सामाजिक यथार्थ के प्रति आकर्षित हुए। इस युग के कथाकारों ने समाज को सुधारने के उद्देश्य से समाज में व्याप्त बुराइयों को यथार्थवादी ढंग से चित्रित करने का प्रयास किया। इस काल के दौरान शिक्षा की प्रगति तेजी से होने लगी जिससे विशाल पाठक वर्ग तैयार हुआ जिसके फलस्वरूप मिज़ो कथा साहित्य का भी अधिक विकास हुआ और यह साहित्य की सबसे लोकप्रिय विधा बन गयी।[xviii] इस युग के प्रमुख कथाकार हैं - सी. लाइज़ोना, ललरुआली, ललह्लिङलिआना साइओई, डॉ. एच. ललुङमुआना, एच. ललङूरलिआनी, ज़ालोमा, ललजुईआ कोलनी, सी. हरमना, बी. पोलथङा आदि।

पारंपरिक मिज़ो उपन्यास का उद्देश्य है सामाजिक मूल्यों की पहचान करना और उन्हें बनाए रखना। इस दौर के लेखकों ने अपने उपन्यासों में 'त्लोमङइह्ना' के दो अलग-अलग पक्षों को रेखांकित किया है - पहला मिज़ो त्लोमङइह्ना, जो एक महत्त्वपूर्ण मिज़ो सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य है और जिसका अर्थ है दूसरों की नि:स्वार्थ सेवा या परोपकार और दूसरी त्लोमङइह्ना या भाईचारे की ईसाई अवधारणा।[xix] समकालीन उपन्यास स्पष्ट रूप से इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि ईसाई धर्म के माध्यम से समाज में परिवर्तन और सुधार हुआ है। उपन्यासों में ईसाई धर्म के सकारात्मक परिणामों पर जोर दिया गया है जैसे बेहतर शिक्षा, चर्च द्वारा विवाह को मान्यता दिया जाना, महिलाओं के खिलाफ भेदभाव धीरे-धीरे समाप्त होना, स्त्रियों के लिए शिक्षा का द्वार खोल दिया जाना, आदि।[xx] मिज़ो उपन्यास के शुरुआती दौर में उपन्यासकारों ने आमतौर पर अपने समय की मिज़ो जीवनशैली और संस्कृति का वर्णन किया है। सन् 1980 के बाद कई तरह के उपन्यास लिखे जाने लगे। आधुनिक मिज़ो उपन्यासकार जैसे के.सी.ललवुङा (ज़ीकपुई पा) पारंपरिक मिज़ो उपन्यासकारों की तरह केवल ऐतिहासिक उपन्यासकार न होकर मनोवैज्ञानिक उपन्यास लेखक के रूप में भी सामने आने लगे। इस प्रकार आधुनिक मिज़ो उपन्यासकारों के विषय में बदलाव दिखने लगा, उनके लेखन में समाज के साथ-साथ व्यक्ति भी महत्त्वपूर्ण होने लगा। आधुनिक मिज़ो उपन्यासकारों ने कथानक और पत्रों के माध्यम से मिज़ो समाज को प्रस्तुत करने का प्रयास किया। आधुनिक मिज़ो उपन्यास अधिक यथार्थवादी होने लगे। इन उपन्यासों में समकालीन जीवन के अच्छे और बुरे दोनों पक्षों को चित्रित करने का प्रयास किया गया। "मिज़ो उपन्यासकारों के अधिकांश लेखन को सामाजिक और नैतिक उत्थान का माध्यम माना जा सकता है, क्योंकि प्रारंभ से ही हमारे उपन्यासों की एक सामान्य विशेषता है कि यह समाज को दिशा दिखाने वाला एक माध्यम है, न कि स्वांतः सुखाय लिखी जाने वाली एक कलात्मक रचना मात्र।"[xxi]

रमबुआई साहित्य:

मिज़ो इतिहास में से 1986 तक 1966के या 'मिज़ो रमबुआई का काल'वर्षों के समय को 20'मिज़ोरम में अशांति का काल' कहा जाता है। मिज़ो इतिहास की सबसे महत्त्वपूर्ण एवं भयावह घटना है जिसने 'मिज़ो विद्रोह' ' मिज़ो साहित्य के अंतर्गतरमबुआई साहित्य' नामक एक नई साहित्यिक कोटि को जन्म दिया। रमबुआई साहित्य भारत से स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए 1966 से के बीच 1986घटित मिज़ो विद्रोह और उस अवधि के दौरान मिज़ोरम के अशांत माहौल को संबोधित करता है। मिज़ो साहित्य के अंतर्गत मिज़ो विद्रोह एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा है। मिज़ो विद्रोह ने कविता, नाटक, कथा साहित्य आदि साहित्य की विभिन्न विधाओं को काफी प्रभावित किया है। दो दशकों (1966-1986) तक चलने वाले विद्रोह का समय मिज़ो लोगों के लिए संकट और संघर्ष का समय था। मारगरेट चोललओमपुई .ज़ामा और सी .आ वानचिआऊ द्वारा संपादित किताब आफ्टर'डेकेड्स ऑफ साइलेन्सवॉइसेस फ्रॉम , :में रमबुआई साहित्य को इस प्रकार परिभाषित किया गया है 'मिज़ोरम: अ ब्रीफ़ रिव्यू ऑफ मिज़ो लिटरचर

'अशांत भूमि का साहित्य'रमबुआई साहित्य का शाब्दिक अनुवाद है ", अर्थात् मिज़ो नैशनल फ्रन्ट मूवमेंट के अशांत इतिहास से उत्पन्न कथा साहित्य ,कथेतर साहित्यगीत और कविताएँ ,। वे चाहे एम.एन.एफ .से जुड़े लोगों द्वारा लिखी गयी रचनाएँ हों या गैरएम-.एन.एफ. लेखकों की रचनाएँ हों, वे इस प्रकार की रचना में शामिल हैं, जो लगातार बढ़ रही हैं और आने वाले वर्षों में इसकी वृद्धि जारी रहने की संभावना है।"[xxii]

मिज़ो कथा साहित्य के अंतर्गत रचनात्मक लेखन के रूप में रमबुआई साहित्य मिज़ोरम के 20 काले और अंधेरे वर्षों को प्रस्तुत करता है, जिसमें एम.एन.एफ. और गैर-एम.एन.एफ. दोनों दृष्टिकोणों से लिखी गयीं कथाएँ मौजूद हैं। रमबुआई के प्रभाव में रची गयीं प्रायः सभी साहित्यिक कृतियों में मिज़ो एकता की भावनाएँ, एम.एन.एफ. की विचारधारा, एम.एन.एफ. वॉलन्टियर्स की शहादत, गाँव के लोगों की पीड़ा और विद्रोह से जुड़ी कठोर यादें, स्त्रियों का बलात्कार, गाँवों का जलाया जाना, भारतीय सेना की ग्राम समूहीकरण की नीति आदि विषय शामिल हैं।

1966 से पूर्व पार्टी प्रचार से संबंधित पुस्तिकाओं और विद्रोह से पहले लिखी गई कुछ व्यक्तिगत कविताओं को 'रमबुआई साहित्य' का अग्रदूत माना जा सकता है। जैसे कि मिज़ो यूनियन का पैम्पलेट 'पॉलिटिक्स कल सुआल लकह फीमखुर अङाई' (गलत राजनीति से सावधान रहें) और 'इंडिपेंडेंट थू आ मिज़ो यूनियन थुपुआन' (मिज़ो यूनियन की स्वतंत्रता की घोषणा)[1963],एम.एन.एफ. अध्यक्ष ललदेङा द्वारा लिखा गया 'ज़लेन्ना थुचः नं. 1'(स्वतंत्रता संदेश-1) [1962] और 'ज़लेन्ना थुचः नं. 2'(स्वतंत्रता संदेश-2) [1963]।[xxiii]

1973 में ललदेङा द्वारा लिखी गई पुस्तिका 'मिज़ोरम मार्चेस टूवर्ड्स फ्रीडम' और त्लाङच्छुआका द्वारा लिखी गई पुस्तिका 'मिज़ोरम पोलिटिकल चनचिन' (मिज़ोरम की राजनीतिक के बारे में) प्रकाशित हुई। फरवरी, 1969 में दम्पा साप्ताहिक पत्रिका में 'पीस मेर्किंग इन मिज़ोरम' को प्रकाशित किया गया। 2013 में डॉ. जे.वी.ह्लुना ने ललह्मिङथङा के राजनीतिक लेखों के संग्रह 'प्रॉब्लेम ऑफ पीस मेर्किंग इन मिज़ोरम' (मिज़ोरम में शांति स्थापना में समस्या) को उसके मूल शीर्षक के साथ प्रकाशित करवाकर एक नया जीवन दिया, जिसे पहले एम.एन.एफ. अध्यक्ष ललदेङा के गुस्से के कारण दफना दिया गया था। 1965 में ललह्मिङथङा ने एम.एन.एफ. विचारधारा की नींव 'एक्सोडस पॉलिटिक्स' प्रकाशित की। भूमिगत मिज़ो सरकार के रक्षा मंत्री रहे आर. ज़मोइआ द्वारा लिखी गया पुस्तक 'ज़ौफाते ज़िनकोङः' मिज़ो विद्रोह से संबंधित सुविख्यात पुस्तक है। पी.बी. रौसाङा ने 'इनसर्जेंसी इन मिज़ोरम', बिआकछूङा ने 'ह्नम कलसिआम', आर.साङकोईआ ने 'ज़ौफा ज़लेन्ना सुआलतूते लमत्लुआङ' और चोङजुआला ने 'क शिङनुन ज़िनकोङ' नामक रमबुआई साहित्य लिखे। एम.एन.एफ. अध्यक्ष ललदेङा के निजी सचिव, बाद में एम.एन.एफ. के उपाध्यक्ष ज़ौरमथङा ने 1980 में 'ज़ोउरम ज़लेन्ना लुङफूम' और बाद में 'मिज़ो नैशनल मूवमेंट' का प्रकाशन किया। 1981 में 'मिज़ो ह्नम ह्लाबू' (मिज़ो जाति गीत) पुस्तक को प्रचार मंत्रालय, मिज़ोरम सरकार द्वारा प्रकाशित किया गया था।[xxiv] इसके बाद भी मिज़ोरम विद्रोह से संबंधित कई किताबें प्रकाशित हुईं।

एम.एन.एफ. के उपाध्यक्ष ललनुनमोइआ की डायरी के तीन खंडों– 'ज़लेन्ना चाउः', 'ईस्ट पाकिस्तान' और '1971' को 2022 में प्रकाशित किया गया। वित्त मंत्री सी.ललखोलिआना ने भी अपनी डायरी के आधार पर 'मिज़ो नैशनल मूवमेंट' नामक पुस्तक प्रकाशित किया। सीनेटर बुआलशाङा ने 'खुआरेइ सूलह्नू' और ज़ौरमथङा ने 'ज़ोरम ज़लेन्ना ह्मिङ क साइन' नामक पुस्तक प्रकाशित किया।

रमबुआई से संबंधित कुछ पत्रिकाएँ भी निकाली गयी थीं। रमबुआई से पूर्व पॉल ज़खूमा द्वारा प्रकाशित 'आइजल डेली न्यूज' ने कुछ समय के लिए रमबुआई के संघर्ष पर प्रकाश डाला। 1964 में प्रकाशित किया गया 'मिज़ो ओ' पत्रिका बीच में रुककर 1972 में पुनः प्रकाशित हुई। नवम्बर 1968 से 'तोरःबोम' पत्रिका प्रकाशित की गयी।

मिज़ो कथा साहित्य के क्षेत्र में मिज़ो विद्रोह का काफी प्रभाव पड़ा है। ललओमपुईआ वानचिआऊ ने अपनी पुस्तक रमबुआई से संबंधित सभी मिज़ो कथा साहित्य को रमबुआई कथा साहित्य "है कि में कहा 'रमबुआई लिटरेचर' "कहा जा सकता है।[xxv] इस रमबुआई ने मिज़ो कवितानाटक, कथा साहित्य आदि साहित्य की विभिन्न विधाओं को , प्रभावित किया है। इसरमबुआई ने मिज़ो साहित्य, विशेष रूप से रमबुआई से संबंधित कथा साहित्य के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। मिज़ो साहित्य के क्षेत्र में कविता और नाटक की तुलना में कथा साहित्य में रमबुआई का प्रभाव बहुत अधिक है। जहाँ कविता और नाटक के क्षेत्र में रमबुआई का प्रभाव धीरेधीरे कम होता दिखता है, वहीं - में प्रथम रमबुआई कथा के प्रकाशित होने के बाद से आज तक लगातार बढ़ कथा साहित्य में इसका प्रभाव 1976 रहा है और यह प्रभाव इतना अधिक है कि मिज़ो साहित्य में'रमबुआई उपन्यास' को एक उपविधा भी माना जाने - लगा है। मिज़ो साहित्य मेंं रमबुआई से संबंधित उपन्यासों को दो आधारों पर विभाजित किया गया है पहला – रमबुआई के दौर में लिखे गए रमबुआई पर आधारित उपन्यास और दूसरा रमबुआई के बाद लिखे गए रमबुआई पर आधारित उपन्यास।[xxvi]

प्रथम प्रकाशित मिज़ो विद्रोह आधारित कथा के संबंध में विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। ललओमपुईआ वानचिअऊ ने अपने पुस्तक 'रमबुआई लिटरेचर' में यह उल्लेख किया है कि '1975 में मिज़ोरम विधानसभा के पूर्व उपाध्यक्ष वानललडेना द्वारा लिखा गया 'क दी वे खा' (Ka Di Ve Kha) उपन्यास जो 'साइक्लोस्टाइल' में प्रकाशित हुआ था, रमबुआई से संबंधित सबसे पहला उपन्यास माना जाता है।'[xxvii] परंतु गवर्नमेंट शाङबाना कॉलेज द्वारा आयोजित सेमिनार की प्रोसीडिंग्स- 'रमबुआई लिटरेचर' में ललिलिआनज़ुआला का कहना है कि "वर्ष 1976 से पहले कोई ऐसा मिज़ो उपन्यास जिसका आधार रमबुआई था, शायद प्रिन्ट में उपलब्ध नहीं है, लेकिन यह सच है कि ऐसी रचना मौजूद थी। चूँकि तब मिज़ोरम एक अशांत क्षेत्र था, इसलिए रमबुआई के दौर की रचनाएँ कभी-कभार ही प्रकाशित हो पाती थीं। लेकिन जेम्स दोउखूमा द्वारा लिखे गये 'रिनओमइन' उपन्यास को रमबुआई आधारित पहला प्रकाशित उपन्यास माना जा सकता है, जिसे डेविड मेमोरियल प्रेस, थकथीङ बाज़ार, आइज़ोल द्वारा दो खंडों में प्रकाशित किया गया था।"[xxviii]

यद्यपि वानललडेना द्वारा लिखा गया उपन्यास 'क दी वे खा' (Ka Di Ve Kha) जेम्स दोउखूमा के उपन्यास 'रिनओमइन'(1970) से एक वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था, लेकिन अब इस उपन्यास की प्रति उपलब्ध नहीं होने के कारण मिज़ो विद्रोह पर आधारित उपन्यास के रूप में जेम्स दोउखूमा के 'रिनओमइन' उपन्यास को पहला प्रकाशित उपन्यास माना जा सकता है।

जेम्स दोउखूमा का उपन्यास 'रिनओमइन' 1970 में सिलचर जेल में लिखा गया था, जिसे 2015 में आर. ललरोना द्वारा प्रकाशित किया गया था। अपने उपन्यास की प्रस्तावना में, उपन्यासकार जेम्स दोउखूमा ने उल्लेख किया है कि यह जेल में बिताए गए समय की याद में लिखा गया था। यह उपन्यास 1966 के मिज़ोरम विद्रोह पर आधारित है, जिसमें 1965 की एम.एन.एफ. विशेष असेम्बली से लेकर 1968 तक की मुख्य घटनाएँ प्रस्तुत की गई हैं। यह रमह्लुनी और रोउज़ुआला के प्रेम और मिज़ो विद्रोह के कारण उनके संघर्ष की कथा पर आधारित है। यह उपन्यास 1966 के मिज़ो विद्रोह का एक प्रतिबिंब है जिसमें यह दिखाया गया है कि विद्रोह के दौरान एक प्रेमी जोड़े के साथ क्या होता है और समाज एवं परिवारों पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है। इस उपन्यास को मिज़ो विद्रोह पर लिखे गए उपन्यासों में से सबसे अच्छा उपन्यास भी माना जाता है। 'रिनओमइन' उपन्यास में मिज़ो यूनियन और

एम.एन.एफ. के बीच के संबंधों की सच्ची तस्वीर को चित्रित किया गया है, गाँव के बीच कोकतू (मुखबिर) के कारण एम.एन.एफ. वॉलन्टियरों की पीड़ा और एम.एन.एफ. सेना की कार्रवाई का भी वर्णन है।[xxix]

'रिनओमइन' उपन्यास के प्रकाशन के 12 साल बाद 1982 में प्रमोद भटनागर द्वारा लिखित 'ज़ौरमथङी: डॉटर ऑफ द हिल्स' को विक्रांत प्रेस, दिल्ली द्वारा प्रकाशित किया गया था। यह उपन्यास अंग्रेजी में लिखा गया पहला मिज़ो विद्रोह संबंधी उपन्यास है जिसे गैर-मिज़ो लेखक द्वारा लिखा गया था। इस उपन्यास के लेखक प्रमोद भटनागर मिज़ोरम के केंद्र शासित प्रदेश बनने के बाद मिज़ोरम में काम कर रहे थे। रमबुआई के समय की पृष्ठभूमि पर आधारित इस उपन्यास की कहानी ज़ौरमथङी और अजय कपूर की है, जो पंजाब का एक पुलिस अधिकारी है, जिसकी कहानी के अंत में मृत्यु हो जाती है। ज़ौरमथङी का मामा एक भूमिगत सैनिक है, जिस पर 10,000/- रुपये का इनाम है, लेकिन लुङदाई गाँव में उनके घर को एम.एन.एफ. द्वारा जला दिया जाता है, और उनके पिता साङज़ुआला उनके हाथों मारे जाते हैं।

मिज़ोरम शांति समझौते पर हस्ताक्षर होने से ठीक पहले 1985 में आधुनिक मिज़ो कथा साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखने वाले सी. लाईज़ोना का 'थुरुक' उपन्यास प्रकाशित हुआ। यह असल में एक लघु उपन्यास है जो मिज़ो विद्रोह के प्रारम्भिक काल से संबंधित है। इस प्रकार मिज़ो विद्रोह के इस पहले दशक के दौरान मिज़ो विद्रोह केन्द्रित एक अंग्रेज़ी उपन्यास तथा उक्त तीन मिज़ो उपन्यास प्रकाशित हुए जिसे मिज़ो साहित्य की एक बड़ी उपलब्धि माना जा सकता है।

के.सी. ललवुङा उर्फ ज़ीकपुई पा ने 1989 में रमबुआई पर आधारित'नुन्ना कोङ ठूआमपुईआ' उपन्यास लिखा। इस उपन्यास में सेना के अहंकार और मिज़ो महिलाओं पर उनके द्वारा किये गए अत्याचार को स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है। उपन्यासकार ने अपने इस उपन्यास के माध्यम से यह दिखाया है कि कैसे सेना ने विवाहित महिलाओं और युवतियों को चर्च और स्कूलों में कैद करके उनके साथ क्रूर सामूहिक बलात्कार किया था। उपन्यास की एक पात्र पी कूङलिआनी ने लगातार क्रूर सामूहिक बलात्कार के कारण खुद को फांसी लगा ली और उन तीन महिलाओं को मिज़ो सेना द्वारा गोली मार दी गई क्योंकि उन्होंने गलत तरीके से यह प्रचारित किया था कि सेना द्वारा किए गए बलात्कार में कुछ महिलाओं को मज़ा आ रहा था तथा उनका मज़ाक उड़ाया जा रहा था।

डॉ. ललल्लुआङलिआना खिआङते द्वारा संपादित किताब 'अ स्टडी ऑफ मिज़ो नॉवेल' में वानङ्हाका ने अपने 'अ क्रिटिकल स्टडी ऑफ द डेवलपमेंट ऑफ मिज़ो नोवेल्स' लेख के अंतर्गत 1960 से 1970 के वर्षों के बारे में इस तरह लिखा है कि "तत्कालीन मिज़ो ज़िले में विद्रोह ने इस समय के दौरान पूर्ण उपन्यासों के लिए कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी, इसलिए इसे 'मिज़ो साहित्य का अंधकार युग' भी कहा जा सकता है।"[xxx] यह सच है कि मिज़ो विद्रोह (रमबुआई) का समय मिज़ो लोगों के लिए एक संकटपूर्ण और अराजक समय था, जिसने कई तरह से मिज़ो साहित्य के विकास में बाधा डाली, लेकिन इसने मिज़ो साहित्य के विकास को अलग ढंग से प्रभावित भी किया था। मिज़ो विद्रोह के समय मिज़ो कथाकार अपनी भावनाओं और दृष्टिकोणों को अपने लेखन में अपनी इच्छा के अनुसार व्यक्त नहीं कर सकते थे। एम.एन.एफ. के आंदोलन के प्रति उनका अपना दृष्टिकोण, खास तौर पर उनकी प्रगति या निंदा के बारे में लिखना उनके लिए खतरे से कम नहीं था। मिज़ो कथा लेखकों के साथ-साथ स्थानीय समाचार पत्रों के संपादकों के लिए भी खतरा कम नहीं था। पी. ललनिथङा, आईएएस (सेवानिवृत्त) ने अपनी किताब 'इमरजेंस ऑफ मिज़ोरम' में उल्लेख किया है कि 1982 के मई में विधायक पु ज़ादिङा और छोरपिआल स्थानीय समाचार पत्र के संपादक पु ज़ेड.ए.कापमोइआ की गोली मारकर हत्या कर दी गई थी।[xxxi]

कुछ उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में रमबुआई के माहौल और उससे जुड़े अन्य पहलुओं को दर्शाया है। ऐसे उपन्यासों में रमबुआई के कुछ मुद्दों को पात्रों के माध्यम से चित्रित किया जाता है, लेकिन उनमें रमबुआई का गहरा प्रभाव नहीं होता। कुछ लेखक उपन्यास को रोचक बनाने के लिए केवल रमबुआई के कुछ संदर्भों का प्रयोग

करते हैं। ललह्मिङलिआना साईओई द्वारा लिखा गया 'केईमा यूनियनलिआना' और ललशिआता द्वारा लिखा गया 'ह्माङाइहना ज़ूङज़ाम' उपन्यास को इसी तरह के उपन्यासों के अंतर्गत रखा जा सकता है।

लेकिन कई उपन्यास ऐसे हैं जो सीधे-सीधे मिज़ो विद्रोह पर आधारित हैं। ऐसे उपन्यासों में उपन्यासकार, उपन्यास की कथावस्तु के रूप में मिज़ो विद्रोह (रमबुआई) और रमबुआई के सामाजिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक प्रभावों को रखते हैं। ऐसे उपन्यासों में घटनाओं और पात्रों का चयन और चित्रण वास्तविक जीवन से किया जाता है और इसके साथ ही ऐतिहासिक तथ्यों को महत्त्व दिया जाता है। जेम्स दोउखूमा का उपन्यास 'रिनओमइन'(1976), 'सिलाइमु ङाई:ओम'(1992), 'खाम कार सेनह्ली'(2005); के.सी.ललवुङा उर्फ ज़ीकपुई पा का उपन्यास 'नुन्ना कोङ ठूआमपुईआ'(1989); ज़ौथनसाङी पा का उपन्यास 'मित्तुई कारा ह्माङाइह्ना'(1995); ललरेममोइआ साइलोउ का उपन्यास 'ह्माङइहतू तुआरना'(2001); के.होलला साइलोउ का उपन्यास 'मिज़ो ङाई: दान देक चे थम'(2001) (आत्मकथानक उपन्यास); माफेली का उपन्यास 'ङिहल्ह हर कन तुआर'(2010); सैमसन थनरूमा का उपन्यास 'बेइसेईना मिततुई'(2010); सी. छुआनवोरा का उपन्यास 'रिनपुई लेह सेईज़ीका'(2011); ललएङज़ाउआ का उपन्यास 'फलुङ'(2019) आदि को रमबुआई पर आधारित महत्त्वपूर्ण उपन्यासों के अंतर्गत रखा जा सकता है।

मिज़ो विद्रोह से संबंधित उपन्यासों का लेखन पुरुष उपन्यासकारों द्वारा अधिक हुआ है। लेकिन तीन मिज़ो महिला उपन्यासकार हैं जिन्होंने रमबुआई से संबंधित उपन्यास लिखे हैं। वे उपन्यास हैं– माफेली द्वारा लिखित 'ङिहल्ह हर कन तुआर'(2010), मलसोमी द्वारा लिखित 'ज़ौरमी'(2015) और हन्ना ललह्लनपुई द्वारा लिखित 'व्हेन ब्लैक बर्ड फ्लाई'(2019)। इनमें से 'ज़ौरमी' और 'व्हेन ब्लैक बर्ड फ्लाई' अंग्रेज़ी में लिखे गए हैं। इस तरह माफेली एकमात्र लेखिका हैं जिन्होंने रमबुआई आधारित मिज़ो उपन्यास लिखा है।

मिज़ो साहित्य के अलावा हिन्दी कथा साहित्य के क्षेत्र में मिज़ो विद्रोह के समय में मिज़ोरम में खुफिया बलों के प्रमुख के रूप में तैनात और भारत सरकार के साथ शांति के लिए बातचीत करने के लिए मिज़ो भूमिगत नेताओं को मनाने में शामिल श्रीप्रकाश मिश्र ने 1996 में हिन्दी में मिज़ो विद्रोह आधारित उपन्यास'जहाँ बाँस फूलते हैं' लिखा। यह उनका पहला उपन्यास था। इस उपन्यास में श्रीप्रकाश मिश्र ने 1959 के 'माउताम' और उसके बाद भारतीय राज्य से अलग होने के लिए ललदेङा के नेतृत्व में चले सशस्त्र विद्रोह को पृष्ठभूमि के रूप में प्रस्तुत किया है।

यह कहा जा सकता है कि मिज़ो विद्रोह के दौरान मिज़ो लोगों द्वारा झेली गई निजी पीड़ा और सामाजिक कठिनाइयों ने ही मिज़ो साहित्य के अंतर्गत रमबुआई साहित्य जैसी कोटि को जन्म दिया है। अधिकांश रमबुआई आधारित उपन्यास आमतौर पर मिज़ो विद्रोह के दौरान भारतीय सेना, एम.एन.एफ. के भूमिगत वॉलन्टियरों के आपसी संघर्ष और इसके बीच पिसते मिज़ो लोगों की दर्दनाक पीड़ा और संकटपूर्ण स्थिति को प्रस्तुत करते हैं।

मिज़ो विद्रोह और संघर्ष के प्रभाव में लिखे गए रमबुआई आधारित उपन्यास किसी भी अन्य साहित्यिक कृति से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। रमबुआई कथा साहित्य निर्दोष मिज़ो नागरिकों के बीच की हिंसा, उनकी पीड़ा, उनके संघर्ष और उनकी परेशानियों का गवाह है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह विद्रोह के समय मिज़ो स्त्रियों की खामोश पीड़ा, उनके दोहरे संघर्ष और निर्दोष नागरिकों की दयनीय दशा को साहित्य में दर्ज करता है। रमबुआई उपन्यास मिज़ोरम के क्रूर राजनीतिक उथल-पुथल का यथार्थवादी और सजीव चित्र प्रस्तुत करता है।

ललओमपुईआ वानचिआऊ अपनी पुस्तक में 1986 से 2022 के बीच प्रकाशित 66 'रमबुआई लिटरेचर' रमबुआई कथाओं का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि ये वे"कथाएँ हैं जो पुस्तक के रूप में उपलब्ध हैं। अगर हम और अधिक विस्तार से खोजें तो, यह संभव है कि कम-से-कम सत्तर)70 रमबुआई कथाएँ (मिलेंजिनमें वे भी शामिल , हैं जो अब पुस्तक के रूप मेंउपलब्ध नहीं हैं।"[xxxii] दो दशकों तक चलने वाले मिज़ो विद्रोह के संकटग्रस्त दौर में भी मिज़ो साहित्य के अंतर्गत मिज़ो कथा साहित्य का अधिक विकास हुआखास तौर पर रमबुआई आधारित उपन्यास ,

के क्षेत्र में। उन दो दशकों के दौरान पीड़ावेदना, संकट आदि अनुभवों को रमबुआई आधारित उपन्यासों में मार्मिक , रूप से चित्रित किया गया और दो दशकों तक चलने वाला मिज़ो विद्रोह मिज़ो साहित्य के लिए एक छिपे हुए वरदान की तरह बन गया। रमबुआई से संबंधित अनेक उपन्यासों का प्रकाशित होना निश्चित रूप से मिज़ो कथा साहित्य के लिए एक बड़ी उपलब्धि है।

---

[i] Dr. K.C. Vannghaka, Mizo Novel Zirchianna (A critical Study of Mizo Novel), पृष्ठ सं. 91 (मूल उद्धरण मिज़ो में, अनुवाद हमारा)

[ii] Dr. K.C. Vannghaka, Literature Zungzam, पृष्ठ सं .25 (मूल उद्धरण मिज़ो में, अनुवाद हमारा)

[iii] Dr. Zoramdinthara, Mizo Fiction: Emergence and Development, पृष्ठ सं. 48 (मूल उद्धरण अंग्रेजी में, अनुवाद हमारा)

[iv] Lal Rinawma, Mizo Novel lo chhuah leh than zel dan Thu leh Hla, A monthly Literary Journal of the Mizo Academy of Letters, January, 2012, पृष्ठ सं. 21 (मूल उद्धरण मिज़ो में, अनुवाद हमारा)

[v] Dr. Laltluangliana Khiangte, A study of Mizo Novel, पृष्ठ सं. 4 (मूल उद्धरण अंग्रेजी में, अनुवाद हमारा)

[vi] R. Lalianzuala, Mizo Novel Golden Jubilee (1937-1987) Souvenier, पृष्ठ सं. 96 (मूल उद्धरण मिज़ो में, अनुवाद हमारा)

[vii] B. Lalthangliana, Ka Lungkham: Introduction to Mizo Literature, पृष्ठ सं. 207 (मूल उद्धरण मिज़ो में, अनुवाद हमारा)

[viii] Dr. Zoramdinthara, Mizo Fiction: Emergence and Development, पृष्ठ सं. 88 (मूल उद्धरण अंग्रेजी में, अनुवाद हमारा)

[ix] B. Lalthangliana, Mizo novel lo chhuah tan dan leh hmasawn zel thu (history of Mizo Novel 1937-87) R. Lalianzuala, Mizo Novel Golden Jubilee (1937-1987) Souvenier, पृष्ठ सं. 102 (मूल उद्धरण मिज़ो में, अनुवाद हमारा)

[x] Dr. Zoramdinthara, Mizo Fiction: Emergence and Development, पृष्ठ सं. 20 (मूल उद्धरण अंग्रेजी में, अनुवाद हमारा)

[xi] वही, पृ. 123 (मूल उद्धरण अंग्रेजी में, अनुवाद हमारा)

[xii] Dr. Laltluangliana Khiangte, Mizo thu leh hla chanchin, Department of Mizo, Mizoram University, 2022, पृष्ठ सं. 231-237 (मूल उद्धरण मिज़ो में, अनुवाद हमारा)

[xiii] Dr. Zoramdinthara, Mizo Fiction: Emergence and Development, पृष्ठ सं. 20 (मूल उद्धरण अंग्रेजी में, अनुवाद हमारा)

[xiv] वही, पृ. 24 (मूल उद्धरण अंग्रेजी में, अनुवाद हमारा)

[xv] वही, पृ. 24 (मूल उद्धरण अंग्रेजी में, अनुवाद हमारा)

[xvi] वही, पृ. 75-76 (मूल उद्धरण अंग्रेजी में, अनुवाद हमारा)

[xvii] वही, पृ. 184 (मूल उद्धरण अंग्रेजी में, अनुवाद हमारा)

[xviii] वही, पृ. 185-186 (मूल उद्धरण अंग्रेजी में, अनुवाद हमारा)

कामेंग ई-पत्रिका / KAMENG E-JOURNAL
ISSN: 3048-9040 (Online)
संस्करण I | अंक II | अक्टूबर 2025 – अप्रैल 2026 | अर्धवार्षिक पत्रिका
Edition I | Issue II | October 2025 – April 2026 | Half Yearly Journal

परिंदे : अतीत और वर्तमान के बीच जूझता मानव द्वंद्व

हेमन्त कुमार गुप्ता[1]

शोधार्थी[2]
हिन्दी विभाग
तेजपुर विश्वविद्यालय
तेजपुर , असम

This is an open access article under the Copyright (c) 2025 कामेंग ई-पत्रिका

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-Share Alike 4.0 International License.

सहकर्मी समीक्षा जर्नल
Peer reviewed Journal

Page No.: 11- 17

निर्मल वर्मा की कहानी परिंदे आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य की एक अत्यंत महत्वपूर्ण रचना है, जिसमें मानव जीवन की सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक स्थितियों और बदलते सामाजिक संबंधों का गहन चित्रण मिलता है। इस कहानी का मुख्य प्रतिपाद्य मानव के भीतर व्याप्त अकेलापन, संबंधों की जटिलता, भावनात्मक दूरी और अस्तित्वगत संकट है। कहानी के पात्र बाहरी रूप से सामान्य जीवन जीते हुए दिखाई देते हैं, किन्तु उनके भीतर गहरा खालीपन और असंतोष व्याप्त है। वे एक-दूसरे के करीब होते हुए भी भावनात्मक रूप से दूर हैं। इस प्रकार, लेखक यह संकेत करता है कि आधुनिक जीवन की आपाधापी और बदलती जीवनशैली ने मानवीय संबंधों की आत्मीयता को कमजोर कर दिया है। परिंदे में 'परिंदे' का प्रतीक अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह स्वतंत्रता, उड़ान और मुक्ति की आकांक्षा का प्रतिनिधित्व करता है, वहीं दूसरी ओर मनुष्य के भीतर के बंधनों, असुरक्षाओं और सीमाओं को भी उजागर करता है। इस प्रतीक के माध्यम से लेखक यह दर्शाता है कि मनुष्य अपने ही बनाए हुए संबंधों और परिस्थितियों में बँधकर रह जाता है, जबकि उसका मन स्वतंत्रता की ओर आकृष्ट रहता है। कहानी में प्रेम का भाव भी उपस्थित है, किन्तु वह पूर्णता प्राप्त नहीं कर पाता। प्रेम के साथ दूरी, संकोच और अनकही भावनाएँ जुड़ी हुई हैं, जो संबंधों को और अधिक जटिल बना देती हैं। लेखक ने अत्यंत सरल, संवेदनशील और प्रभावशाली भाषा में इन भावनाओं को व्यक्त किया है, जिससे पाठक पात्रों के मनोभावों से सहज रूप से जुड़ जाता है। अतः कहा जा सकता है कि परिंदे केवल एक कहानी नहीं, बल्कि आधुनिक मनुष्य के अंतर्मन की गहरी व्यथा और उसकी अस्तित्वगत स्थिति का सजीव चित्रण है। यह रचना हमें यह सोचने के लिए प्रेरित करती है कि भौतिक प्रगति के बावजूद मनुष्य भावनात्मक स्तर पर कितना अकेला और असुरक्षित होता जा रहा है।

बीज शब्द : अकेलापन, संबंधों की जटिलता, आंतरिक संघर्ष, आधुनिक जीवन, प्रतीकात्मकता, अस्तित्वगत संकट, संवेदनशीलता

परिंदे निर्मल वर्मा की सबसे चर्चित कहानी है | अपने प्रकाशन काल से ही इस कहानी ने अपनी एक अलग पहचान बनाई है | यह कहानी नई कहानी आन्दोलन के दौर में इसलिए भी सर्वाधिक चर्चित हुई क्योंकि नई कहानी

जिन-जिन तत्वों और बिन्दुओं पर पुरानी कहानी से अपने आप को अलग कर रही थी वे सारे के सारे गुण इस कहानी में पूरी तरह विद्यमान हैं | परिंदे नई कहानी की पूरी विशेषताओं को अपने आप में समेटे हुए अतीत और वतर्मान के बीच जूझते हुए मानव द्वन्द की कहानी है | इस कहानी में नयापन क्या है ? इससे पूर्व पुरानी और नई कहानी में मुख्य पार्थक्य क्या था इस इस बिंदु को स्पष्ट कर लिया जाए तो परिंदे कहानी को समझने में हमें ज्यादा आसानी होगी | 1947 में जब हम आजाद हुए तो हमारी प्राथमिक समस्या थी देश को बेहतर से बेहतर प्रशासनिक व्यवस्था प्रदान करना | लेकिन आजादी के बाद एक प्रकार का मोहभंग होता दिखाई देता है जो हम धूमिल, नागार्जुन, रघुवीर सहाय जैसे कवि एवं भीष्म साहनी, मार्कंडे, अमरकांत, यशपाल जैसे कथाकार के यहाँ बखूबी देख सकते हैं | ऐसे में जो पुरानी कहानी अब तक आदर्श की बात कर रही थी अचानक से उसका सामना यथार्थ से होता है और यहां से कहानी एक प्रकार से नया रूप धारण कर लेती है | यानि नई कहानी एक प्रकार से आजादी के बाद विकसित होते नए मध्यवर्ग और उसकी बनती परिवर्तित होती नई आकांक्षाओं से युक्त कहानी है | यह आकांक्षा एक जगह पर स्थित नहीं रहने वाली थी | नई कहानी यथार्थ और सामाजिक जीवन की वास्तविकताओं को अब पुराने चश्मे से नहीं देखती है बल्कि इन्हें नए सन्दर्भों में देखना चाहती है | यहीं पिछली कहानी से नई कहानी अपने आप को पूरी तरह अलगा लेती है | नई कहानी का परिवेश पुरानी कहानी से भिन्न है | नई कहानी के परिवेश में कहानी के परंपरागत और रूढ़ तत्वों का पूरी तरह से निषेध है | अब कहानी में किसी भी व्यक्ति का केवल अच्छे गुणों के आधार पर मूल्यांकन नहीं किया जाएगा बल्कि उसके गुण, अवगुण के आधार पर उस व्यक्ति का समग्रता में मूल्यांकन किया जाएगा | नई कहानी अतीत की कहानियों को पूरी तरह नकार देता है और यह पूरी तरह वर्तमान पर केन्द्रित होने वाली कहानी है | यानि नई कहानी में बेरोजगारी, स्त्री-पुरुष के बीच बनता बिगड़ता सम्बन्ध, तनाव, घुटन, भय, संत्राश, अकेलापन, पारिवारिक सबंध जैसे पदों पर ज्यादा जोर दिया गया |

अब बात निर्मल वर्मा और उनकी कहानी परिंदे पर किया जाए तो ज्यादा अच्छा होगा | ऊपर नई कहानी की जिन विशेषताओं की बात की गई है वह यूँ ही नहीं की गई है बल्कि ये सभी विशेशताएँ परिंदे कहानी में हमें आसानी से हर जगह देखने को मिल जाएंगी | निर्मल वर्मा कि अधिकांश कहानियां उस वर्ग की होती हैं जो पूरी तरह आधुनिकताबोध और नागरीय जीवन जीने का आदि हो चुका है | आज के नागरीय जीवन में सभी व्यस्त हैं | इस जीवन में मनुष्य यह चाहता है कि उसे मेहनत कम करना पड़े और सबकुछ उसे जल्दी से जल्दी मिल जाए | इस जल्दी से जल्दी पाने के चक्कर में वह अपने घर परिवार से धीरे-धीरे अलग होता चला जाता है और एक नई जगह पहुँच जाता है जहाँ वह एक प्रकार से अजनबी होता है, वह अकेला होता चला जाता है | अकेले होने के बावजूद वह अपने मन की बात को किसी दूसरे से नहीं बताता है | किसी दूसरे के साथ संवाद स्थापित नहीं करना चाहता है | परिंदे भी कुछ इसी तरह की कहानी है | परिंदे कहानी के सभी पात्र इसी कारण आत्मकेंद्रित हैं | जिन मूल्यों के साथ ये पात्र अपना बचपन जिए हैं कालांतर में वे मूल्य बदल गए हैं और उनके स्थान पर नए मूल्य आ गए हैं | ये सभी पात्र इन नए मूल्यों के अनुरूप खुद को नहीं बदल पाते हैं और पुराने मूल्यों के साथ समझौता नहीं कर पाते हैं | यह इस कहानी का नयापन है | “अभी तक जो कहानी सिर्फ कथा कहती थी या कोई चरित्र पेश करती थी अथवा एक विचार को झटका देती थी, वही निर्मल वर्मा के हाथों जीवन के प्रति एक नया भावबोध जगाती है, साथ ही ऐसे दुर्लभ अनुभूति

चित्र प्रदान करती है जिन्हें हम कम से कम हिंदी में कहानी के माध्यम से प्राप्त करने के अभ्यस्त नहीं थे |"[1] कहीं न कहीं परिंदे कहानी के सभी पात्र अपने आप से छद्म करते नजर आते हैं | वे अपनी निजी जिंदगी को नियति मानकर जीते चले जाने में विश्वास करते हैं | यही कारण है कि उन सभी पात्रों के भीतर कोई आवेग उत्पन्न नहीं होता है जो उन्हें भविष्य में आगे बढ़ने कि प्रेरणा दे सके | जब हम परिंदे कहानी पढ़ते हैं तो कभी-कभी हमें परिंदे कहानी के पात्रों पर गुस्सा भी आता है क्योंकि वे ठान लिए हैं कि अपनी जिन्दगी को एक ही दृष्टि से देखेंगे | बड़ी बात यह है कि जब किसी व्यक्ति में कोई दुर्बलता होती है और उसे जब अपनी दुर्बलता का पता चलता है तो वह व्यक्ति उस दुर्बलता को दूर करने का प्रयास करता है लेकिन परिंदे कहानी के पात्रों के साथ ऐसा नहीं होता नजर आता है | ये अपनी कमजोरी को या अपनी दुर्बलता को लगातार अपनी निजी जिद्द या हठ के कारण छिपाते चले जाते हैं और अपने अतीत से वापस नहीं आना चाहते हैं | ऐसी बात नहीं है कि किसी व्यक्ति के साथ अतीत में कोई अप्रिय घटना घटी हो तो वह उससे वापस नहीं आ सकता है | हाँ यह ठीक है कि कभी-कभी कुछ घटनाएँ व्यक्ति को भीतर से परेशान जरुर करती हैं और उस व्यक्ति को अपने अतीत से वापस आने में कभी-कभी थोड़ा समय भी लग जाता है | लेकिन क्या अपने अतीत से चिपके रहने मात्र से वह अपने वर्तमान के साथ न्याय करता है ? नहीं | परिंदे के सभी पात्रों की दुर्बलता कभी-कभी उनकी व्यक्तिगत दुर्बलता नहीं लगती है बल्कि वह उनके हठपन की दुर्बलता लगती है | उदाहरण के लतिका को देखिए | ऐसी बात नहीं है कि लतिका पढ़ी-लिखी और समझदार लड़की नहीं है | वह एक कान्वेंट स्कूल की महिला छात्रावास की अधीक्षक है | वहीं उसी स्कूल में पढ़ाती भी है | अपना अच्छा बुरा भली-भांति समझती भी है, लेकिन इन सभी बातों का उससे क्या मतलब | अतीत में कभी उसका गिरीश नेगी से प्रेम सम्बन्ध था और गिरीश नेगी की कश्मीर में मृत्यु हो जाती है | लतिका को यह अच्छी तरह पता है कि उसका प्रेमी अब वापस लौटकर नहीं आने वाला है | वह अब इस दुनिया में नहीं है | वह मिस्टर ह्यूबर्ट के प्रेम को ठुकरा भी देती है और गिरीश नेगी के प्रेम के साथ जी रही है | क्या लतिका अपने वर्तमान के साथ न्याय कर रही है ? नहीं | क्या अब वह किसी दूसरे के साथ प्रेम नहीं कर सकती है ? बिल्कुल कर सकती है लेकिन वह ऐसा नहीं करना चाहती है | लतिका मन ही मन सोचती भी है "वह क्या किसी को चाह भी सकेगी, उस अनुभूति के संग जो अब नहीं रही, जो छाया सी उसपर मंडराती रहती है, न स्वयं मिटती है न उसे मुक्ति दे पाती है |"

परिंदे कहानी को अधिकांश विद्वान प्रेम की कहानी स्वीकार करते हैं, और परिंदे बहुत हद तक एक प्रेम कहानी है भी | लेकिन कैसा प्रेम ? वह प्रचलित प्रेम जैसा है या प्रेम कि कोई नई परिभाषा गढ़ती है | यहीं निर्मल वर्मा नई कहानी आन्दोलन के साथ परिंदे कहानी को जोड़ने का प्रयास करते हैं | इस कहानी में प्रेम को एक नयी दृष्टि से देखने का प्रयास करते हैं | लतिका के भीतर गजब का द्वन्द देखने को मिलता है | वह कभी-कभी क्या चाहती है उसे खुद नहीं मालूम है | एक ओर तो वह अतीत से यानि अपने प्रेम से मुक्त होना चाहती है तो दूसरी ओर उसी खोए हुए प्रेम कि तड़प है जिसकी यादें लगातार लतिका को परेशान करती रहती है और लतिका उन्हीं सुनहरी यादों के सहारे जीवन को जीना चाहती है और उसे ही नियति मानकर उससे चिपके रहना चाहती है | उसके सामने प्रश्न है कि वह कौन सा रास्ता चुने ? आगे बढे या अपने अतीत से चिपके रहे | वह निर्णय नहीं ले पाती है | लतिका गिरीश

नेगी के प्रेम धरोहर को संजोकर रखना चाहती है जो कुम्हला गया था | इसी कारण वह ह्यूबर्ट के प्रेम को स्वीकार नहीं कर पाती है बल्कि वह उससे आँखें चुराती है | डॉ. मुखर्जी लतिका को समझाते हैं "लेट द डेड डाई | मरने वाले के संग खुद थोड़े ही मरा जाता है | किसी चीज को न जानना यदि गलत है, तो किसी चीज को न भूलना, जोंक की तरह उससे चिपके रहना, यह भी गलत है |"

परिंदे कहानी कभी-कभी हम पाठकों को भी मानसिक द्वन्द में डाल देती है | मन ही मन यह हमें बहुत कुछ सोचने विचारने पर मजबूर कर देती है | हम यह कहते तो हैं कि लतिका अपने अतीत से चिपके रहना चाहती है लेकिन जब वह परिंदों को एक जगह से दूसरे जगह जाते देखती है तो वह अपने अतीत से निकलना भी चाहती है | वह परिंदों कि तरह उन्मुक्त होना चाहती है | आकाश में उड़ते परिंदों को देखकर वह सोचती है "हर साल गर्मियों की छुट्टी से पहले ये परिंदे मैदान की ओर उड़ते हैं, कुछ दिनों के लिए बीच के इस पहाड़ी स्टेशन पर बसेरा करते है, प्रतीक्षा करते हैं बर्फ के दिनों का, जब वे नीचे अजनबी, अनजाने देशों में उड़ जाएँगे |" यहीं पर हमें परिंदे कहानी के प्रतिकार्य को समझने का भी मौका मिलता है | आखिर ये परिंदे क्या हैं ? यहाँ परिंदे लतिका के उस स्नेहिल हृदय का प्रतीक है | इन परिंदों की खासियत होती है कि ये कभी भी एक स्थान पर नहीं ठहरते हैं | जैसे ही मौसम बदलता है ये भी एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर प्रस्थान करते रहते हैं | इन्हें अपने से प्रेम होता है, लगाव होता है | ये अपनी खुशी के लिए एक मुल्क छोड़कर दूसरे मुल्क कि ओर उड़ जाते हैं | एक निश्चित समय पर, एक स्थान पर रहने के बाद ये अपने गंतव्य स्थान की ओर प्रस्थान कर देते हैं | लेकिन लतिका का हृदय ऐसा नहीं कर पाता है | परिंदे के पात्रों और इन परिंदों में यही अंतर है कि ये पात्र एक ही जगह पर ठहर कर रह गए हैं, ये आगे नहीं बढ़ना चाहते हैं | क्या लतिका अपनी ख़ुशी के लिए अपने अतीत से आगे उड़ नहीं सकती है ? ये पात्र उन पक्षियों कि तरह उन्मुक्त नहीं हैं, बल्कि ये अंतर्मुख होते जाते हैं और संत्राश से ग्रस्त होते चले जाते हैं | सभी के मन में एक ही प्रश्न है कि हम कहाँ जाएं ? मोहन राकेश मुख्य रूप से इन पात्रों की इसी समस्या को इस कहानी में उजागर करना चाहते हैं | धीरे-धीरे लतिका भी इस कैद से मुक्त होना चाहती है | लेकिन प्रश्न यह है की मुक्ति किससे ? तो मुक्ति अपनी स्मृतियों से, पुरानी यादों से | धीरे-धीरे मुक्ति का यह प्रश्न नियति का प्रश्न बन जाता है | नामवर सिंह परिंदे कहानी को इसी मुक्ति से जोड़कर देखते हैं "स्वतंत्रता या मुक्ति का प्रश्न जो समकालीन विश्व साहित्य का प्रमुख प्रश्न बन चला है, निर्मल वर्मा कि कहानियों में प्रायः अलग-अलग दृष्टिकोण से उठाया गया है | एक तरफ से देखा जाए तो परिंदे कहानी के लतिका की समस्या स्वतंत्रता या मुक्ति कि समस्या है | अतीत से मुक्ति, स्मृति से मुक्ति, उस चीज से मुक्ति जो हमें चलाए चलती है और अपने रेले में घसीट ले जाती है | इस कहानी में प्रायः सभी व्यक्ति चरित्र अपने अतीत से मुक्ति के लिए प्रयत्नशील है |"[2]

नई कहानी आन्दोलन पूर्णतः यथार्थ पर बल देने वाला कहानी आन्दोलन है | यह आन्दोलन बाहरी दिखावा, सहानुभूति, उपदेश, आदर्श से बचने वाली कहानी आन्दोलन है | परिंदे कहानी के सभी पात्र खुद तो अकेलेपन का शिकार हैं लेकिन अपने इस अकेलेपन को कभी भी वे किसी पर थोपना नहीं चाहते हैं | सबकी यहाँ अपनी-अपनी,

अलग-अलग समस्या है, लेकिन कोई भी पात्र अपनी समस्या या दुःख को किसी दूसरे पात्र के सामने प्रदर्शित नहीं करता है | यह बहुत बड़ी बात है की सभी अपनी स्थिति को एक दूसरे से छिपाने का प्रयास करते हैं | क्योंकि इस कहानी के सभी पात्र यथार्थ को स्वीकार कर चुके हैं | इन पात्रों को अच्छी तरह से पता है कि मैं अपनी दुःख को दूसरों के सामने कितना भी सुनाऊं, कोई मेरा दुःख हर नहीं सकता है | मेरी परिस्थिति को कोई बदल नहीं सकता है | मिशाल के तौर पर डॉक्टर मुखर्जी को ही लीजिए जो हमेशा अपनी स्मृतियों में खोए रहते हैं लेकिन जब वे मिस वुड से बातें करते हैं तो ऐसा दिखावा करते हैं जैसे बहुत खुश हैं "मुझे अपने बारे में कोई गलतफहमी नहीं है मिस वुड मैं सुखी हूँ |"

लतिका का अंतर्मन उसे अपनी वास्तविकता से लगातार दूर लिए जाता है | अब कहानी के शुरुआती प्रसंग को ही लीजिए | कैसे लतिका अपने अकेलेपन, संत्राश, बेचैनी, और अतीत प्रेम को प्रकृति पर थोपना चाहती है, और प्रकृति की आड़ में तार्किक बातें करना शुरू कर देती है | अब जब हम थोड़ा ठहर कर यह विचारकरते हैं तो हमें यह विचार जरुर करना चाहिए कि क्या जिसका प्रेमी मृत्यु को प्राप्त हो चुका है, जो अपने प्रेमी के यादों से बाहर नहीं आना चाहती है और खुद को अकेले रखना पसंद करती है, उसे गिरीश नेगी के साथ बीताए गए पल याद आते हैं और वह उन्हीं यादों में खोए रहती है | वह अपने अतीत से चिपककर रहना चाहती है | जब लतिका का अंतर्मन ही प्रसन्न नहीं है तो क्या उसे बाहर कि प्रकृति पसंद आएगी ? क्या ऐसा संभव है ? लेकिन लतिका अपने अकेलेपन को छिपाने के लिए प्रकृति का सहारा लेती है "इस छोटे से हिल स्टेशन पर रहते उसे (लातिका को) खासा अर्सा हो गया, लेकिन कहाँ समय पतझड़ और गर्मियों का घेरा पाकर सर्दियों की गोद में सिमट जाता है, उसे कभी याद नहीं रहता है |" पाठक को यह पढ़ने पर यही लगेगा कि लतिका को प्रकृति से प्रेम है, लेकिन भीतरी सच्चाई यह नहीं है | लतिका को वह हिल स्टेशन नहीं छोड़ना पड़े, वह खुद में गिरीश नेगी कि स्मृतियों के साथ खोई रहे, इसके लिए वह बहाना भी करती है | वह भी घर जाना चाहती है, हिल स्टेशन को छोड़ना चाहती है लेकिन वह अपने मन के द्वन्द के कारण छात्रावास में ही रुकना पसंद करती है | जब छात्राएं उनसे पूछती हैं "मैडम छुट्टियों में क्या आप घर नहीं जा रही हैं |" तब लतिका जो जबाब देती है उसके उत्तर में कितना बनावटीपन है इसे भी देखा जाना चाहिए जब वह कहती है "अभी कुछ पक्का नहीं है - आई लव द स्नो फोल |" यहाँ एक संकेतमात्र है | नामवर सिंह लिखते हैं "नई कहानी संकेत करती नहीं बल्कि स्वयं संकेत है |"[3] निर्मल वर्मा यहाँ पुरानी और नई कहानी को ध्यान से देखने के बाद ही नई कहानी कि विशेषताओं को इस कहानी में पिरोने का प्रयास करते हैं | नामवर सिंह के इस कथन पर ध्यान दिया जाना चाहिए जो उन्होंने निर्मल वर्मा के लिए कहा है "उन्होंने प्रचलित कहानी कला के दायरे से भी बाहर निकलने कि कोशिश की है, यहाँ तक कि शब्द की अभेद दीवार को लांघकर शब्द के पहले के मौन जगत में प्रवेश करने का भी प्रयत्न किया है और वहां जाकर प्रत्यक्ष इन्द्रियबोध के द्वारा वस्तुओं के मूलरूप को पकड़ने का साहस दिखाया है | इसीलिए उनकी कहानीकला में भी नवीनता है |"[4] लतिका में भीतरी द्वन्द कहानी में शुरू से अंत तक बना हुआ है | कहानी में एक प्रसंग आता है जहाँ लतिका को उसी छात्रावास कि छात्र जूली का प्रेम पत्र मिलता है | लतिका सबसे पहले उसके प्रेम पत्र को खुद छिपा लेती है न कि वह उसे समझाती है | वह ऐसा इसीलिए करती है क्योंकि जूली के

प्रेम से उसे इर्ष्या होती है क्योंकि उसका खुद का प्रेम फलीभूत नहीं हुआ था लेकिन लतिका में जब धीरे-धीरे परिवर्तन आता है तो कहानी के अंत में वह उसके प्रेम पत्र को, उसको सजा देने के बजाय चुपचाप जूली के तकिये के नीचे रख देती है "शायद कौन जाने जूली का यह प्रथम परिचय हो, जिसे कोई भी लड़की बड़े चाव से संजोकर, संभालकर अपने में छिपाए रहती है, एक अनिर्वचनीय सुख जो पीड़ा लिए है, पीड़ा और सुख को डुबोती हुई, उमड़ते ज्वर कि खुमारी,.....जो दोनों को अपने में समा लेती है |" लगभग जब नई कहानी चर्चा में आई थी तब निर्मल वर्मा की कहानी परिंदे नामवर सिंह को इतनी पसंद आई थी की उन्होंने परिंदे कहानी को सबकी पहली कहानी कहा था "परिंदे निर्मल वर्मा की ही पहली कृति नहीं है बल्कि जिसे हम नयी कहानी कहना चाहते हैं उसकी भी पहली कृति है |"[5] नई कहानी पर बहुत प्रहार भी किया गया लेकिन नई कहानी और निर्मल वर्मा के बारे में नामवर सिंह ने कहा है "परिंदे से यह शिकायत दूर हो जाती है की हिंदी कथा साहित्य अभी पुराने सामाजिक संघर्ष के स्थूल धरातल 'मार्कटाइप' कर रहा है | समकालीनों में निर्मल वर्मा पहले कहानीकार हैं जिन्होंने इस दायरे को तोड़ा है बल्कि छोड़ा है, और समाज के मनुष्य की बाह्य आन्तरिक समस्या को उठाया है |"[6] रामदरश मिश्र भी निर्मल वर्मा कि कहानियों के बारे में लिखते हैं कि परिंदे प्रतीक हैं, उन टूटे हुए प्रेमियों की जो अपनी अपनी जगहों से टूटकर उस पहाड़ी स्थान पर एकत्र हो गए हैं | लतिका, डॉक्टर मुखर्जी, मिस्टर ह्यूबर्ट भी तो परिंदे ही हैं किन्तु परिंदे तो एक ठहराव के बाद मैदान की ओर उड़ जाएँगे किन्तु वे तीनों कहाँ जाएंगे ? वे तो उसी सुनसान पहाड़ी स्थान पर एक साथ होते हुए भी अलग-अलग रहने के लिए अभिशप्त हैं | परमानद श्रीवास्तव कहते हैं कि "निर्मल वर्मा की यथार्थ संवेदना आत्मचेतना पर आधारित होने के कारण अधिक गहन और तीव्र है |"[7] निर्मल वर्मा के कथा साहित्य पर अलग-अलग विद्वानों ने अपनी-अपनी राय दी है | इसी सन्दर्भ में आलोचक वीरभारत तलवार कि बातों पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए "दूसरों से न जुड़ पाने, अकेले रह जाने अलगावबोध कि स्थिति को निर्मल वर्मा ने अपनी कहानियों का मुख्य विषय बनाया है |"[8] आगे वे लिखते हैं "लतिका का अकेलापन उसकी स्थिति भर है, ऐसी समस्या नहीं जिससे पीड़ित दिखाई देती हो |"[9] वीरभारत तलवार ने इसी में आगे निर्मल वर्मा की कहानियों के बारे में लिखा है कि "निर्मल की कहानी में ब्यौरे नहीं होते बल्कि ब्यौरे में कहानी होती है |"[10]

निष्कर्ष के रूप में आसानी से यह कहा जा ससकता है कि निर्मल वर्मा की कहानी परिंदे के सभी पात्र अतीत और वर्तमान के बीच के रास्ते को नहीं समझ पा रहे हैं | वे अतीत के साथ जिएँ या उससे निकलकर वर्तमान के साथ आगे बढ़ें | सभी इसी द्वन्द में अपनी अपनी जिन्दगी को जिए जा रहे हैं | निर्मल वर्मा इस कहानी के माध्यम से यह संकेत जरुर करना चाह रहे हैं कि अतीत के साथ चिपके रहना बेवकूफी है | इन्सान को अपने अतीत से निकलकर एक नई जिन्दगी की शुरुआत फिर से करनी चाहिए | अतीत को बिल्कुल याद किया जाना चाहिए लेकिन उसी अतीत के साथ चिपके रहना और अपने को विवेक शून्य कर लेना इस बात में कतई समझदारी नहीं है |

सन्दर्भ सूची

1. सिंह, नामवर, कहानी: नई कहानी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2009, पृष्ठ 54
2. सिंह, नामवर, कहानी: नई कहानी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2009, पृष्ठ 53
3. सिंह, नामवर, कहानी: नई कहानी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2009, पृष्ठ 32

4. सिंह, नामवर, कहानी: नई कहानी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2009, पृष्ठ 64

5. सिंह, नामवर, कहानी: नई कहानी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2009, पृष्ठ 52

6. सिंह, नामवर, कहानी: नई कहानी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2009,

7. श्रीवास्तव, परमानंद, संपादक, अवस्थी, देवीशंकर, आज की कहानी नई कहानी: सन्दर्भ और प्रकृति, राजकमल प्रकाशन, 2008, पृष्ठ 130

8. तलवार, वीरभारत, सामना, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2007, पृष्ठ 164

9. तलवार, वीरभारत, सामना, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2007, पृष्ठ 174

10. तलवार, वीरभारत, सामना, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2007, पृष्ठ 148

कामेंग ई-पत्रिका / KAMENG E-JOURNAL
ISSN: 3048-9040 (Online)
संस्करण I | अंक II | अक्टूबर 2025 – अप्रैल 2026 | अर्धवार्षिक पत्रिका
Edition I | Issue II | October 2025 – April 2026 | Half Yearly Journal

चाय बागान की हिंदी कविताओं में अभिव्यक्त स्त्री जीवन का संघर्ष

अर्चना विश्वकर्मा[1]
[1]**शोधार्थी**
हिंदी विभाग
तेजपुर विश्वविद्यालय, असम

This is an open access article under the Copyright (c) 2025 कामेंग ई-पत्रिका

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-Share Alike 4.0 International License.

सहकर्मी समीक्षा जर्नल
Peer reviewed Journal

भारत सदियों से कृषि प्रधान देश रहा है यहांँ कपास,जूट,अनाज, चाय ,मसाले , फल-सब्जीयों आदि की पैदावार आसानी से होती है। चाय उत्पादन में भारत चीन के बाद दूसरे स्थान पर है और विश्व के चाय निर्यातक देशों में भारत दूसरा ही स्थान रखता है। चाय बागानों से देश को करोड़ों का मुनाफा हो रहा है। आज चाय बागान सफलता के जिस मुकाम पर है,वहाँ तक पहुँचने में चाय बागान के मजदूरों की अहम भूमिका है, मजदूरों में भी स्त्री मजदूरों का योगदान चाय बागान को इस मुकाम पर पहुँचाने में अधिक है। यह कहना बिल्कुल भी गलत नहीं होगा कि , चाय बागान में स्त्रियाँ चाय बागान की प्रमुख स्तंभ हैं क्योंकि स्त्रियाँ ही अपने कोमल हाथों को खुरदुरा बनाकर कोमल-कोमल चाय की कलियां और पत्तियां तोड़कर उन्हें फैक्ट्री तक पहुँचाती हैं।इस कार्य में वे पुरूषों से अधिक कुशल होती है। फिर भी उन्हें समानता, अत्याचार और अनगिनत तक़लिफे झेलनी पड़ती हैं। उनके वर्षों की खून-पसीने की मेहनत के कारण ही देश को चाय बागानों से लाभ हो रहा है पर दूसरी ओर जी-तोड़ मेहनत करने वाले मजदूर वर्ग आज भी शोषित हैं, अभावों में ही किसी तरह जीवन काट रहे हैं। समाज और साहित्य एक दूसरे से जुड़े होते हैं। चाय बागान समाज की अभिव्यक्ति भी वहां के साहित्य के हरेक विधाओं में कमोबेश हुई ही है। नाटक, निबंध, उपन्यास, कहानी,और कविता लगभग हर विधा में रचनाकारों ने बेबाकी से चाय बागान समाज पर अपनी कलम चलाई है।उनकी पीड़ा का स्वर कविताओं में भी साफ़ झलकता है।इस शोध पत्र में चाय बागान की ही स्त्रियों की कलम से निकली चाय बागान की स्त्री केन्द्रित कविताओं के जरिए यथार्थ के धरातल पर आधारित उनकी समस्याओं को जाना, समझा जाएगा।

Page No.: 19-23

बीज शब्द: चाय बागान, स्त्री,स्त्री समस्याएं, क्रेच घर, जीवन संघर्ष

समाज और साहित्य का अत्यंत गहरा और जीवंत संबंध है , साहित्यकार समाज से ही साहित्य की विषयवस्तु ग्रहण करता है और वही साहित्य समाज को व्यापक रूप से प्रभावित करता है। साहित्य एक प्रकार से समाज के लिए मार्गदर्शक की भूमिका निभाता है जो समाज को वास्तविकता दिखाकर उसके उत्थान के लिए नई राह तलाशता है।

समाज में व्याप्त कुरितियांँ जैसे बाल विवाह,सती प्रथा,जाति प्रथा, छूआछूत आदि सामाजिक विसंगतियों के विविध मुद्दों को साहित्य ने मुखर रूप दिया जिससे समाज में सुधार की चेतना पैदा हुई, नैतिक और मानवीय मूल्यों का विकास हुआ साथ ही अस्मिता से जुड़े प्रश्न उभरकर सामने आने लगे । अतः साहित्य व्यक्ति को सोचने, समझने और प्रश्न करने की क्षमता देता है। साहित्य की प्रबलता के कारण ही आज निम्न से निम्न तबके के लोग भी बेबाकी के साथ अपनी आवाज़ बुलंद कर पा रहे हैं। उनकी पीड़ा शब्दों में पिरोकर लाखों लोगों तक पहुँच पा रही है। साहित्य समाज के बीच के अंतर्संबंधों को विजयदान देथा की पुस्तक 'समाज और साहित्य' से समझा जा सकता है जिसमें वे लिखते हैं - "साहित्य का उद्देश्य ही समाज का कल्याण होना चाहिए अर्थात् साहित्य में समाज का मंगलभाव और समाज को परिवर्तित करने की क्षमता होनी चाहिए।वह समाज की भावनाओं के साथ चलता है साहित्य समाज में घटित विकृत व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाने का काम करता है और समाज के हर पहलू को प्रभावित करता है।"(1)

साहित्य की हर विधा में हमारे समाज की छवि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रदर्शित होती है।साहित्य के विविध विधाओं के मध्य कविता सहज और सर्वप्रिय है। कविता के विषय में आचार्य रामचंद्र शुक्ल अपने निबंध 'कविता क्या है'में लिखते हैं -"कविता के द्वारा हम संसार के सुख,दु:ख, आनंद और क्लेश आदि यथार्थ रूप से अनुभव कर सकते हैं।"(2) आधुनिक काल से अबतक कविता ने कई सारे अनछुए पहलुओं पर प्रकाश डाला है। भ्रष्टाचार, अत्याचार और शोषण के दौर में कविता जन जागृति का सशक्त माध्यम जान पड़ती है।

जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि समाज और साहित्य का संबंध गहरा है। हर समाज की अपनी एक अलग पहचान होती है वैसे ही चाय बागान समाज की भी अपनी एक अलग जीवन शैली है और भारत के हर क्षेत्र के चाय बागान समाज की जीवन शैली लगभग एक सी है। चाय बागान में काम करने वाली स्त्रियाँ ही चाय बागान की प्रमुख स्तंभ होती है उनके अथाह परिश्रम के बगैर भारत के चाय को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ख्याति मिलना असम्भव रहता। साल के बारहों महीने आठ घंटे खड़े होकर स्त्रियाँ बागान में पत्तियाँ तोड़ती है। चाय बागान की प्रमुख स्तंभ होने के बावजूद भी चाय बागान की स्त्रियाँ बहुत सारी समस्याओं से घिरी होती है किंतु यहां इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि इन तमाम विषम परिस्थितियों के बावजूद अन्य क्षेत्रों की स्त्रियों की तुलना में चाय बागान समाज की स्त्रियाँ अधिक स्वतंत्र और कर्मठ दिखाई देती हैं। जहाँ कई समाजों में स्त्रियाँ परंपरागत बंधनों में जकड़ी रहती हैं, वहीं चाय बागान की स्त्रियाँ श्रम और अनुभव के माध्यम से अपनी पहचान स्वयं गढ़ती हैं।उनका जीवन हर दिन घड़ी की सुई के मुताबिक चलता हैं सुबह से लेकर रात तक उनका एक निश्चित रूटीन रहता है जिसमें शायद ही कोई बदलाव होता होगा। चाय बागान में स्त्रियाँ सुबह चार बजे ही उठकर घर साफ करके, चूल्हा चौका निपटाकर सात बजे की सीटी(बागान का समयसूचक सायरन) लगते लगते बागान के लिए चींटीयों की तरह कतार में निकल पड़ती हैं । कभी - कभी तो उन्हें खाने तक का समय नहीं मिलता क्योंकि चाय बागान में बहुत कठोर अनुशासन है समय से दो मिनट भी देरी से बागान पहुँचने पर उन्हें घर वापस भेज दिया जाता है और उनको उस दिन के रोजगार से हाथ धोना पड़ता है। समय के चक्रव्यूह में चाय बागान की स्त्रियाँ किस तरह बंधी रहती है उसे चाय बागान की युवा कवियत्री एमलेन बोदरा ने अपनी कविता 'मेरी माँ' में दर्शाया है -" बड़े सवेरे चार बजे /रोज उठती मेरी माँ/बर्तन माँझती,खाना बनाती/और झाड़-बुहारती घर -आँगन/सात बजे निकलती घर से/ढोकर पोटली संग अपने और/बांधकर मुझे भी पीठ पीछे अपने/सुखी रोटी चबाते चबाते/कुछ चलकर, कुछ दूर दौड़ कर/और कभी गिरते पड़ते,पहुँचती है दस नम्बर सेक्शन/चाय बागान में,मेरी माँ/घास-फूस के बीच बनी/तिरपाल तम्बू में मुझे छोड़कर/पहनती प्लास्टिक/जैसे पहनते स्कूल यूनिफॉर्म।"(3)

कविता की पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि,चाय बागान की स्त्रियाँ केवल गृहस्थी तक सीमित नहीं रहतीं, बल्कि आर्थिक रूप से भी परिवार का मजबूत आधार होती हैं। वे पुरुषों के समान बागानों में श्रम करती हैं, चाय पत्तियाँ तोड़ती हैं और परिवार की आय में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। भारत सरकार ने मजदूरों के हित में 1951 में कुछ नियम पारित किए थे जिसमें कामकाजी मजदूर महिलाओं के बच्चों की देखभाल के लिए 'द प्लांटेशन एक्ट 1951' में क्रेच घर का प्रावधान है जिसमें मुख्य चार बिंदुओं को केन्द्रित किया गया है -

"(a) provide adequate accommodation;

(b) be adequately lighted and ventilated;

(c) be maintained in a clean and sanitary condition; and

(d) be under the charge of a woman trained in the care of children and infants."(4)

प्लांटेशन एक्ट के पारित होने के इतने वर्ष बाद भी चाय बागानों की हालात काफ़ी खस्ता है। आज भी कई सारे बागानों में क्रेच घर की सुविधा नहीं है इसलिए महिलाएं बेबस होकर अपनी पीठ पर नन्हें शिशु को बांधकर ही चाय बागान जाती हैं। उनकी इस दयनीय स्थिति को बिमला भोक्ता अपनी कविता 'मेरी माँ का बेतरा' (बेतरा- बच्चें को पीठ में बांधने वाला कपड़ा)में बयां करती है -"

"तीन महीने की थी मैं नन्हीं जान/,जिसकी काया थी बिल्कुल नर्म/उस नन्हीं जान को बेतरा में बांधे चलाती थी/बेतरा में बांधे डेगती थी नाला/सर पे ढोती थी चालीस-पचास किलो पत्ती/.....

मैंने भी सपने देखे पर मखमली शय्या पर नहीं/देखा मैंने भी सपना चाहबुदा तले/चाहबुदा तले ही मैंने जाना/मुझे नसीब नहीं जानसन की पाउडर और क्रीम!/मुझे नसीब नहीं लाल -लाल और गुलाबी गाल!/मुझे तो नसीब है चिलचिलाती धूप में/मेरी मा के बेतरा में दुबककर धूप सेंकना!/मुझे नसीब है माँ के बेतरे में/माँ की पीठ का पसीना!"(5)

इस तरह हम देख सकते है कि तीन महीने की नन्हीं जान अपनी माँ की पीठ से सटकर व्यवस्था की मार सहती है, कठोर जीवनशैली की साक्षी बनती है।

चाय बागानों का भौगोलिक परिवेश दुर्गम होता है। घने जंगल, पहाड़ियाँ, जंगली जानवर और सीमित संसाधनों के बीच जीवन यापन करना आसान नहीं होता। ऐसे वातावरण में रहने वाले लोग भय से नहीं, बल्कि परिस्थितियों से समझौता कर आगे बढ़ना सीखते हैं जैसे मानो समझौता उनके जीवन का अभिन्न अंग हो। चाय से देश को तो करोड़ों रूपयों का मुनाफा हो रहा है लेकिन चाय बागानों में काम करने वाले मजदूरों को आठ घंटे खड़े होकर खटने पर भी मात्र 232 रू० दैनिक मजदूरी मिलती है। इतने कम पैसों में उन्हें गुजारा करना पड़ता है इसलिए वे एक-एक रू० सोच समझकर खर्च करती हैं। चाय बागान की स्त्रियों के संघर्ष को युवा कवियत्री ज्योत्सना मिंज अपनी कविता 'चाय बागान की सशक्त स्त्री' में लिखती हैं -"धूप,सर्दी या हो वर्षा,हर मौसम में कमाती हैं/साल के बारहों महीने अपना बदन जलाती है/बस कुछ ही रूपयों के लिए वो हर दिन/पसीना बहाती हैं/गर दी जाय कभी बस पाँच रूपया डबली/तो खुद के लिए वह इतवार भी न बचाती है। "(6)

कविता की पंक्तियों में दिया गया शब्द 'डबली' का अर्थ है अतिरिक्त आमदनी अर्थात् चाय बागान में मजदूरों को एक दिन में पच्चीस के. जी. चाय पत्ती तोड़ने पर ही दिनभर की दैनिक मजदूरी मिलती है और पत्ती का वजन कम होने पर उनके मजदूरी में भी कटौती कर दी जाती है वहीं पच्चीस के. जी. से ज्यादा पत्ती तोड़ने पर उनकी मजदूरी में भी बढ़ोतरी होती है उसे ही डबली कहते हैं लेकिन महँगाई के इस दौर में भी एक के. जी. डबली का मूल्य सिर्फ 'डेढ़ रूपया' है जिसे पाने के लिए महिलाएं छुट्टी के दिन भी काम जाती है ताकि ज्यादा पत्ती तोड़ कर वेतन में वृद्धि

हो सके। पत्तियाँ तोड़ते समय उनके हाथ कई बार छिल जाते हैं वे उन्हीं छीलें हाथों से लगातार काम करती है। जेरेलडिना मुचवार ने अपनी कविता 'माँ के हाथ' में इस दर्द को बयां किया है -" मैंने देखा/गायब हो गई है/माँ के हाथों की कोमलता/खुरदुरे और फटे हुए/अंदर के लाल मांस बाहर झांकते हुए/फिर भी माँ /उसी फटे-छिले हाथों से/लगातार /तोड़ती रहती है पत्तियां"(7)

हमारे देश भारत में जहाँ देश को ही माता कहा जाता है और लड़कियों को देवी का रूप माना जाता है वहीं दूसरी तरफ हमारे देश में लड़कियों की सुरक्षा आज भी गंम्भीर चिंता का विषय है। "नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) के 2021 के आंकड़ों के अनुसार भारत में प्रतिदिन औसतन 86 से अधिक रेप (बलात्कार) मामले दर्ज किए जाते हैं।"(8) ये आंकड़े तो दर्ज की गई रिपोर्ट के हैं न जाने कितने मामले तो दर्ज ही नहीं किए जाते और दिन-ब-दिन ऐसी घटनाओं की संख्याओं में बढ़ोतरी हो रही है।चाय बागान की स्त्रियां भी हैवानियत की इस दृष्टि से नहीं बच पाई हैं।

मरीना एक्का लिखती है - "पीठ में उरमाल लादे नवजवान स्त्रियों को/तिरछी नजरों से देख-देख कर/मन ही मन मुस्काए जा रहे हैं/बातों - बातों में ललचाए जा रहे हैं/बुदाओं के बीच पगडंडी में/बाबू साहब इतराये जा रहे हैं।" (9)

चाय बागान के सेक्सुअल हैरेसमेंट (यौन उत्पीड़न) और बलात्कार के 95 प्रतिशत मामले दर्ज नहीं हो पाते उनके पास न तो इतने पैसे होते हैं कि वे कोट-कचहरी, पुलिस थाने के चक्कर लगा सके और न ही इतने जागरूक हैं कि निःशुल्क कार्यवाही के लिए सरकारी सहयोग ले सके।चाय बागान की स्त्रियों का जीवन निरंतर संघर्ष और साहस की माँग करता है। प्राकृतिक आपदाएँ, स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी , शिक्षा का अभाव और आर्थिक तंगी के बावजूद वे हार नहीं मानतीं। बच्चों का पालन-पोषण, परिवार की देखभाल और श्रमिक जीवन की कठिनाइयों को वे साहसपूर्वक निभाती हैं। भारत में चाय उत्पादन की शुरुआत सन 1839-1840 में असम से हुई थी और कुछ वर्षों के अंतराल में ही चाय उत्पादन क्षेत्र का विस्तार बंगाल,केरल ,तमिलनाडु आदि जगहों में भी हो गया और लगभग एस सौ छियासी वर्ष चाय बागानों में खटने के बाद भी जहां वे रह रहे हैं उस जमीन पर उनका कोई मालिकाना अधिकार नहीं है, आज भी वे भूमिहीन हैं। उनके पूर्वज झारखंड,उड़ीसा, नेपाल आदि जिस भी क्षेत्रों से चाय बागान में रोजी - रोटी की तलाश में आए थे वे यहीं बस गए और वहाँ से भी उनका अस्तित्व मिट चुका है इस तरह वे अपनी जड़ों से उखड़ गए और एक बंधुवा मजदूर के रूप में उनकी पहचान बन गई। बागान की व्यवस्था ने उन्हें इस तरह जकड़ा हुआ है कि वे अपनी अवस्था सुधारने में असमर्थ हैं।प्रफुल्ला मिंज इस बंधे जीवन पर लिखती हैं -"घिसे चप्पल,फटे झोले/सुखी रोटी, पुराने छाते/प्लास्टिक,तिरपाल, रस्सी बांधे/बीत गई हमारी सारी जिंदगी।"(10)

चाय बागान की स्त्रियांँ निरुद्देश्य ही जीवन काट रहीं हैं,इस उलझनों से भरी जीवन में समझ ही नहीं पाती कि वह खाने के लिए काम कर रही है या काम करने के लिए खा रही है ।उनके ज़हन में अक्सर यह सवाल उठता है कि,-"क्या मेरे हिस्से में सिर्फ/गोबर के उपले बनाना/लकड़ियों का गट्ठर ढोना/आधी नींद सोना/मीलों पैदल चलना/सुखी रोटी खाना और /पत्तियां तोड़ना ही होगा?"(11)

ऐसे कई सारे प्रश्नों से चाय बागान समाज घिरा हुआ है जिसके निवारण का किसी को ध्यान नहीं। आज देश तरक्की की बुलंदियों को छू रहा है लेकिन यह तरक्की चाय बागान की ओर पहुँच ही नहीं पाई है इसके कई पहलू हो सकते हैं। एक पहलू की ओर इशारा करते हुए एमलेन बोदरा लिखती हैं -"जिन हाथों ने कभी/चाय की पत्तिया नहीं तोड़ी/आठ घंटे खड़े रहकर,और चलकर मीलों/जिनके कन्धों ने नहीं ढोया/कच्ची पत्तियों का वजन कभी/एक दिन की खुराक के लिए भी/नहीं किया हो संघर्ष कभी/उजड़ने का दर्द नहीं जाना कभी जिन्होंने/वे क्या लड़ेंगे हमारे लिए/

इसलिए साथी अब/तुम्हें ही लड़ने होंगे अपने लिए/उठाने होंगे जोखिम/अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए/लिखना होगा नया इतिहास तुम्हें।"(12)

यहां कवियत्री कविता के माध्यम से चाय बागान के लोगों को समस्याओं से पार लगाने वाले किसी उद्धारकर्ता की प्रतीक्षा करने के बजाय अपने हक के लिए एकजुट होकर आवाज़ उठाने को प्रेरित करती हैं।

अतः चाय बागान में स्त्रियाँ बागान की रीढ़ होती हैं जो साहस, कर्मठता , निडरता और आत्मनिर्भरता की जीवंत मिसाल हैं। भयंकर आर्थिक तंगी और कठोर परिश्रम से घिरे संघर्षमय जीवन में भी वे अपने परिवार को जोड़कर रखती है, मेहनत करके बच्चों को पढ़ाती हैं ताकि उन्हें बागान की क्रूरता,बंधुवा मजदूरी ,दमननीति न झेलनी पड़े। ये कविताएं इन सारे ज्वलंत और संवेदनशील मुद्दों को बड़ी ईमानदारी और जीवंतता के साथ स्वर देती हैं।

संदर्भ सूची:-

1.देथा, विजयदान, साहित्य और समाज.जोधपुर राजस्थानी शोध संस्थान,1960. पृष्ठ संख्या 5.

2.शुक्ल, आचार्य रामचंद्र , कविता क्या है. देखा 2/1/2026. (सुबह 8:30 बजे) https://share.google/UMyWrxnrX5kYoJMWa .

3.बोदरा,एमलेन,मेरी माँ.चाय की सिसकियाँ.स.वाल्टर भेंगरा 'तरूण'.प्रथम संस्करण.राँची झारखण्ड एक्सप्रेस,2024.पृष्ठ संख्या 14.

4.द प्लांटेशन लेबर एक्ट ,1951.देखा 3/1/2026. (सुबह 6:30 बजे) Source: India Code https://share.google/IQn75NNmfijhqDlJK .

5.भोक्ता,बिमला,मेरी माँ का बेतरा.बंगाल में हिंदी दलित और आदिवासी कविता.स.डॉ कार्तिक चौधरी और संदीप प्रसाद.प्रथम संस्करण.दिल्ली अधिकरण प्रकाशन,2021.पृ.सं 145.

6.मिंज, ज्योत्सना, चाय बागान की सशक्त स्त्री.चाय की सिसकियाँ.स.वाल्टर भेंगरा 'तरूण'.प्रथम संस्करण.राँची झारखण्ड एक्सप्रेस,2024.पृष्ठ संख्या 93.

7.वहीं , पृष्ठ संख्या 105.

8. रेप इन इंडिया- विकीपीडिया देखा.15/1/2026.

(रात:10 बजे) https://share.google/ORHoX8fsFMey3vyBc .

9.एक्का मरीना, चाय बागान की सशक्त स्त्री.चाय की सिसकियाँ.स.वाल्टर भेंगरा 'तरूण'.प्रथम संस्करण.राँची झारखण्ड एक्सप्रेस,2024.पृष्ठ संख्या 52.

10.मिंज, प्रफुल्ला , बंधुवा मजदूर.बंगाल में हिंदी दलित और आदिवासी कविता.स.डॉ कार्तिक चौधरी और संदीप प्रसाद.प्रथम संस्करण.दिल्ली अधिकरण प्रकाशन,2021.पृ.सं 153.

11.वहीं, पृष्ठ संख्या 158.

12. बोदरा, एमलेन,झण्डे. प्रतिरोध में कविता.स.रंजीत वर्मा.वाराणसी अगोरा प्रकाशन,2021.पृष्ठ संख्या 107.

कामेंग ई-पत्रिका / KAMENG E-JOURNAL
ISSN: 3048-9040 (Online)
संस्करण I | अंक II | अक्टूबर 2025 – अप्रैल 2026 | अर्धवार्षिक पत्रिका
Edition I | Issue II | October 2025 – April 2026 | Half Yearly Journal

चेनाबर स्त्रोत : श्रमिक जीवन और संघर्ष

डॉ. डिम्पी बरगोहाई[1]
[1]सहायक अध्यापक
हिंदी विभाग
मरिढल महाविद्यालय, धेमाजी, असम

This is an open access article under the Copyright (c) 2025 कामेंग ई-पत्रिका

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-Share Alike 4.0 International License.

सहकर्मी समीक्षा जर्नल
Peer reviewed Journal

डॉ. मामोनी रायसम गोस्वामी का साहित्यिक जीवन का प्रथम उपन्यास 'चेनाबर स्त्रोत' कश्मीर की पृष्ठभूमि पर आधारित है और वहाँ अस्थायी रूप से रहकर काम करने वाले मजदूरों के जीवन संघर्ष को केंद्र में रखता है। यह उपन्यास लेखिका के प्रत्यक्ष अनुभवों पर आधारित होने के कारण मजदूरों की असुरक्षा और शोषण का अत्यंत यथार्थपूर्ण रूप में उभरता है। उपन्यास में पूंजीवादी व्यवस्था की अमानवीय नीतियों और श्रमिकों की उपेक्षित स्थिति का गहरा विश्लेषण मिलता है। कथा में विकसित होती सामूहिक चेतना श्रमिक वर्ग के भीतर प्रतिरोध और अधिकार-बोध को रेखांकित करती है। इन बातों को केंद्र में रखते हुए प्रस्तुत अध्ययन उपन्यास के सामाजिक यथार्थ और मानवीय संवेदना की गहराई को समझने का प्रयास करता है। समग्र रूप से यह कृति श्रम जीवन की गरिमा और संघर्ष का महत्वपूर्ण सामाजिक दस्तावेज सिद्ध होती है।

Page No.: 24- 28

बीज शब्द: मजदूर, जीवन संघर्ष, पूंजीवादी व्यवस्था, सामूहिक चेतना, मानवीय संवेदना, सामाजिक यथार्थ, श्रम जीवन, प्रत्यक्ष अनुभव, सामाजिक दस्तावेज

डॉ. मामोनी रायसम गोस्वामी उर्फ इंदिरा गोस्वामी असमिया साहित्य जगत की प्रतिष्ठित एवं प्रख्यात साहित्यकार हैं। आधुनिक असमिया साहित्य की समृद्ध परंपरा की वे उद्भावक मानी जाती हैं। ज्ञानपीठ पुरस्कार और साहित्य अकादमी पुरस्कार जैसे सर्वोच्च सम्मान प्राप्त कर उन्होंने आधुनिक भारतीय साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित की है। अंतरराष्ट्रीय साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में भी उनका व्यक्तित्व अत्यंत सम्मानित माना जाता है। दिल्ली विश्वविद्यालय के आधुनिक भारतीय भाषा विभाग में वह एक अध्यापिका के रूप में दीर्घकाल तक सक्रिय रहीं और साहित्यिक साधना के साथ-साथ अकादमिक क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया।

उनका प्रसिद्ध उपन्यास 'चेनाबर स्त्रोत' आधुनिक औद्योगिक समाज के अंतर्विरोधों का मर्मस्पर्शी दस्तावेज है। इसमें पूंजीवादी व्यवस्था के भीतर श्रम की गरिमा, मजदूर जीवन की कठिनाइयाँ तथा औद्योगिक सभ्यता के कारण प्रकृति और मानवीय संवेदना के विनाश को अत्यंत गहराई से व्यक्त किया गया है। चेनाब नदी की गर्जन तथा लहरों में बहते मजदूरों के जीवन-संघर्ष और अदम्य जिजीविषा का सजीव वर्णन इस उपन्यास का केंद्रीय विषय है। स्वयं लेखिका ने उपन्यास के प्रारंभ में यह स्पष्ट किया है कि, "चेनाबर स्त्रोत मेरा पहला उपन्यास है। हालांकि यह उपन्यास पुस्तक के रूप में 1972 में प्रकाशित हुआ, परंतु मैंने इसे 1964 में लिखना प्रारंभ किया था। यह उपन्यास असम के लोकप्रिय समाचार पत्र 'दैनिक असम' के विशेष अंक में प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास में उस समय के प्राइवेट कंपनियों में काम करने वाले श्रमिकों के जीवन और परिस्थितियों का एक जीवंत चित्र प्रस्तुत किया गया है। यह उपन्यास मैंने बहुत कम उम्र में लिखा था। लेकिन कश्मीर की चंद्रभागा नदी (चेनाबर) पर बने पुल-निर्माण में कार्यरत श्रमिकों की उस समय की वास्तविक स्थिति का चित्रण इसमें हुबहू किया गया है। मैं स्वयं अपने पति माधवेन

रायसोम के साथ उस समय श्रमिकों के कैंप में लगभग एक साल तक रही। यहीं एक दुर्घटना में मेरे पति माधवेन रायसम की मृत्यु हो गई।"1 इस प्रकार उपन्यास की रचना केवल रचनाकार की कल्पना नहीं, बल्कि श्रमिक जीवन के प्रत्यक्ष अनुभव और व्यक्तिगत त्रासदी से उपजा हुआ यथार्थ है। लेखिका जब कश्मीर के चेनाब नदी पर पुल-निर्माण स्थल पर रहीं, उसी क्षण श्रमिकों के सुख-दुःख एवं संघर्ष से भरा उनका कठोर दैनिक जीवन उनके हृदय में गहराई से अंकित हो गया। उन्होंने स्वयं उल्लेख किया है कि यह उपन्यास उसी निर्माण-स्थल की पृष्ठभूमि में आकार लिया। अपने पति की नौकरी के दौरान जब लेखिका कश्मीर में रहने लगे थे, तभी उस कश्मीर के चेनाब नदी पर काम करने वाले मजदूरों तथा श्रमिकों के जीवन को जिस निकटता से उन्होंने देखा और अनुभव किया, वही इस उपन्यास की मूल कथा बन गया।

उपन्यास में मजदूर जीवन का एक महत्वपूर्ण पक्ष उनके संगठनहीन और बिखरे हुए जीवन का चित्रण है। कथानक में यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि मजदूरों के बीच सामूहिकता का अभाव, अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता की कमी, निजी कंपनियों की कठोर नीतियाँ और शासन सत्ता का निरंतर दबाव ये सभी कारण मिलकर उन्हें अत्यधिक शोषण की स्थिति में धकेल देते हैं। संगठित शक्ति के अभाव में वे अपनी कठिन परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए भी आवाज उठाने में असमर्थ रहते हैं, जिसके परिणामस्वरूप अनेक बार उन्हें अपने प्राणों तक की आहुति देनी पड़ती है। यहाँ पुल-निर्माण की पृष्ठभूमि में चेनाब नदी का भयावह और खतरनाक स्वरूप अत्यंत प्रभावशाली ढंग से उभरा है। लेखिका ने इसे अत्यंत यथार्थपूर्ण शब्दों में इस प्रकार चित्रित किया है, "कभी-कभी रात में चेनाब की मंद कलकल ध्वनि भी भयावह रूप धारण कर लेती है। उसके दोनों किनारों के पत्थरों का कोई निशान दिखाई देता। चारों ओर बस पानी ही पानी!! नदी के किनारे पर कंपनी द्वारा रखे गए बालू के बोरे, लोहे की राडें और शटरिंग प्लेटें सब की सब प्रचंड लहरें बहा ले जाती हैं। ठीक ऐसे ही समय में इस भयावह पानी के ऊपर काम करने वाले मजदूरों के प्रति सोनी को दया आती है।"2 यह कथन लेखिका ने स्त्री पात्र सोनी के मन में उभरने वाले करुण भावों के माध्यम से प्रस्तुत किया है, जिससे मजदूरों की भयावह परिस्थितियों और उनकी असुरक्षित जीवन स्थितियों का मार्मिक चित्र उभरता है। यह उन खतरनाक परिस्थितियों को दर्शाता है, जिनमें मजदूर दिन-रात कार्य करते हैं। उनकी सुरक्षा, जीवन मूल्य और अस्तित्व सब कुछ कंपनी की इच्छा पर निर्भर है।

उपन्यास में प्रकृति के विनाश और औद्योगिक विकास के बीच उत्पन्न द्वंद को लेखिका अत्यंत संवेदनशीलता से उभारती हैं। कथा की शुरुआत स्त्री पात्र सोनी के अपने बचपन के खेतों की हरियाली स्मृति से होती है, जहाँ कभी हरियाली, शांति और प्राकृतिक सौंदर्य का विस्तृत संसार था। अब वही स्थान मशीनों, कंक्रीट और औद्योगिक उपकरणों के शोर से भर चुका है। लेखिका ने पात्र सोनी के माध्यम से इस बदलाव की मार्मिकता को तीखे रूप में अभिव्यक्त किया है, "खेत के पास आकर सोनी ने देखा कि खेत की वह साफ-सुथरी, कोमल घास अब गायब हो चुकी है। उस घास की जगह अब क्रेन का बकेट, ऑक्सीजन सिलिंडर, ग्रेब, पाइप, कंक्रीट की प्लेट, क्रेशर के औजार आदि इस्तेमाल किए हुए सामान पड़े हैं। ये सब वस्तुएँ सोनी के लिए बचपन से ही परिचित थीं। इन्हीं के बीच खेल-कूद करते हुए ही सोनी बड़ी हुई थी। आज अचानक उसी कोमल, हरी-भरी घास को अदृश्य कर देने वाली कीचड़ से ढकी पीतल रंगी मशीनें और उपकरण सोनी को किसी कुरूप दाग जैसी लगीं।"3 इस वर्णन के जरिए यह स्पष्ट होता है कि विकास के नाम पर प्राकृतिक जीवन और ग्रामीण सौन्दर्य किस प्रकार निर्मम रूप से नष्ट हो रहा है, और यही परिवर्तन सोनी के भीतर गहरा मानसिक आघात उत्पन्न करता है।

कथा में राघामा, एक स्त्री पात्र, अपने पति सदाशिव की सुरक्षा को लेकर लगातार भय और चिंता में रहती है, क्योंकि पति सदाशिव को कंपनी के इंजीनियर के क्वार्टर में रातभर पहरा देना पड़ता है। श्रमिकों के बीच व्याप्त असुरक्षा की भावना इतनी गहरी है कि राघामा को हमेशा डर सताता है कि कहीं उसका पति सदाशिव भी सोनी के पति गौरीशंकर की तरह दुर्घटना का शिकार न हो जाए। यह प्रसंग श्रमिकों के जीवन में व्याप्त जोखिम, भय और अस्तिरता का जीवंत चित्रण प्रस्तुत करता है। साथ ही लेखिका ने राघामा के अनुभवों के माध्यम से यह भी स्पष्ट किया है कि कंपनी और उसके मालिकों की क्रूर, अमानवीय मानसिकता रोजमर्श की वास्तविकता है।

उपन्यास में सामाजिक असमानता और वर्ग-संघर्ष एक प्रमुख पहलू है। कंपनी के अधिकारी और मजदूर वर्ग के बीच व्याप्त विभाजन सत्ता और पूँजी के असमान विभाजन को उजागर करता है। इंजीनयर, बाई साहेबा जैसे पात्र पूँजी और सत्ता का प्रतीक हैं, जबकि सदाशिव, रामबीर, शिवान्ना, राघामा, सोनी आदि शोषित वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जिन्हें श्रम के बावजूद सम्मान नहीं बल्कि घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। यहाँ मजदूरों के सहज और सरल जीवन- सघर्ष, पीड़ा और अस्तित्व के प्रश्नों को विस्तार से दिखाया गया है। ऊँची इमारतें और भव्य परियोजनाएँ बनाने वाले मजदूर अपनी मेहनत और श्रम के बावजूद दबे हुए हैं, समाज उन्हें नजरअंदाज करता है और उन्हें सम्मान नहीं देता।

उपन्यास का सबसे मार्मिक पक्ष है मजदूर सदाशिव के साथ घटित घटना, जो शोषण और अमानवीयता की परकाष्ठा को उजागर करती है। कंपनी के सत्ता की तथा अधिकारियों द्वारा उसे जबरन शराब पिलाना और झूला पुल पर दौड़ने के लिए मजबूर करना केवल एक प्रसंग नहीं बल्कि सत्ता और पूंजीवादी के गठजोड़ की क्रूर मानसिकता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। सदाशिव तथा उड़िया बूढ़े मजदूर के साथ किया गया अपमानजनक व्यवहार सत्ता- संरचना की नृशंसता को रेखांकित करता है। कंपनी अधिकारी वर्ग मजदूरों को मनोरंजन की वस्तु मानते हैं। यह दृश्य श्रम जीवन की त्रासदी को हृदय विदारक रूप से उभारता है। एक सैन्य ड्राइवर का कथन, "बेईमान! सब बेईमान! बाई साहेबा बेईमान, साहब बेईमान, सरकार बेईमान। हड्डी की पानी कर दे- चालीस साल खून देकर उनके पैर धोए और पेंशन में मिलेगा इतना-सा पैसा!"4 सदाशिव के मन में पहली बार गहरी वितृष्णा और विद्रोह की चिंगारी उत्पन्न करता है। परंतु कंपनी अधिकारियों द्वारा किए गए अपमान और अमानवीय व्यवहार के परिणामस्वरूप सदाशिव की मृत्यु हो जाती है। उनकी यह करुण परिणति प्रस्तुत उपन्यास में विद्रोह की चेतना को और तीव्रता से जाग्रत करती है। पात्र शिबान्ना के नेतृत्व में मजदूरों के बीच धीरे-धीरे संगठन की भावना जन्म लेती है। सदाशिव की मृत्यु के बाद श्रमिकों में आक्रोश बढ़ता है और वे यूनियन गठन का निश्चय करते हैं। लेकिन कंपनी-अधिकारी दिखावती सहानुभूति दिखाकर विरोध को दबाने की कोशिश करते हैं।

उपन्यास के पात्र रामबीर के कथनों के जरिए सदाशिव के मौत का मार्मिक चित्रण इस प्रकार अभिव्यक्त किया है, "सदाशिव का पेट थोड़ा सा उभरा हुआ था। इसके अलावे उसके शरीर पर कही भी किसी चोट का कोई निशान नहीं था। ऐसा लग रहा था जैसे सदाशिव गहरी शांति से सो रहा हो। मृत्यु के आघात से मानव शरीर की भयावह रूप में टूटे बिखरे हुए रामबीर बुजुर्ग ने कई बार देखा था, लेकिन सदाशिव के शरीर पर उस भयावहता का जरा भी चिह्न नहीं था मानो मृत्यु उसके जीवन में एक शांत छाया बनकर आई हो।"5 इस अंश में रामबीर का कथन मजदूर जीवन की करुण सच्चाई को अत्यंत मार्मिक रूप से उजागर करता है। सदाशिव का शांत मृत्यु का दृश्य रामबीर को भीतर तक झकझोर देता है, क्योंकि उसने अपने जीवन में मजदूरों की अनेक भयावह मौतें देखी हैं। दुर्घटनाएं, अव्यवस्थित श्रम स्थितियों, भूख, थकान और अभाव से उपजी मौतें। लेकिन सदाशिव का शरीर बिना

किसी घाव या विकृति के है, मानों वर्षों का थकान और अथक संघर्ष के बाद उसे पहली बार वास्तविक विश्राम प्राप्त हुआ हो। यह दृश्य उन मजदूरों के जीवन का गहरा प्रतीक बन जाता है, जिन्हें जीवित रहते हुए कभी शांति, सुरक्षा और सम्मान नसीब नहीं होता। उपन्यास में यह भी दिखाया गया है कि पहले भी कई मजदूर

दुर्घटनाओं में मारे गए, पर कंपनी न सुरक्षा देती है, न उचित इलाज। नाम मात्र का अस्पताल भी बाढ़ में बह जाता है। दवाइयाँ देर से पहुँचती हैं और आयोडिन में पानी मिलाया जाता है। कई घायल मजदूर अस्पताल पहुँचने से पहले ही दम तोड़ देते हैं। उपन्यास का कथानक बताता है कि, "साइट पर काम करते समय अचानक होने वाली दुर्घटनाओं में रोजाना न जाने कितने मजदूर घायल हो जाते हैं... कंपनी नाम मात्र के लिए एक छोटा सा अस्पताल खोल रखा है। कभी-कभी दवाइयाँ ट्रक में लादकर वहां लाई जाती हैं। नाम के एक कम्पाउण्डर को छोटे-छोटे शाखाओं में रखा जाता है...लेकिन अक्सर ये तिरपाल से घिरे अस्पताल चेनाब नदी में बाढ़ आने पर दवाइयों समेट बह जाते हैं।"6 उपन्यास में स्त्री-श्रमिकों की पीड़ा भी सोनी, पार्वती, राघामा और धनमई जैसे स्त्री पात्रों के माध्यम से अत्यंत मार्मिक रूप से उभरती है। इन पात्रों के जीवन संघर्ष यह स्पष्ट करते हैं कि श्रम संस्कृति में स्त्री-देह, मातृत्व और स्त्री-अस्मिता के प्रति समाज का उपेक्षापूर्ण दृष्टिकोण दिखाई देता है।

चेनाब की उग्र लहरें उस विकास यात्रा की साक्षी हैं, जो मजदूरों के पसीने, श्रम और बलिदान से निर्मित हुई है, किंतु विडम्बना यह है कि उनके दुःख, संघर्ष और अस्तित्वगत पीड़ाएं समाज की दृष्टि से अक्सर ओझल बनी रहती हैं। इन्ही अनुभवों के बीच सोनी के भीतर एक नव चेतना आती है, दुःख और अपमान की आग में तपकर वह अपने भीतर विद्रोह, साहस और गर्व का एक नया स्वर खोज लेती है। यह स्वर आगामी श्रमिक-आंदोलन और श्रमिक संगठन के संकेतों से भरा है, "सदाशिव की मृत्यु के दुःख के बीच उसके मन में गर्व की भावना उठी। सोनी समझ गई कि अब इस प्राइवेट कंपनी में यूनियन बनकर रहेगी। बातें आग की तरह फैल रही थीं और किसी भी क्षण सब कुछ भड़क सकता था।"7

निष्कर्ष

अत: यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत उपन्यास मजदूर जीवन और उनके संघर्ष, शोषण और औद्योगिक समाज के कठोर यथार्थ का अत्यंत मार्मिक चित्रण है। व्यक्तिगत अनुभव और संवेदना के आधार पर लेखिका ने श्रमिकों की असुरक्षा और वर्ग विभाजन आदि को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया है पात्र सदाशिव की मृत्यु और श्रमिकों में जन्म लेता विद्रोह यह संकेत देता है कि अन्याय के बीच भी प्रतिरोध और संगठित चेतना संभव है। यही स्वर आधुनिक समाज में श्रमिक अस्मिता, श्रम गरिमा और मानवीय अधिकारों की पुनर्स्थापना की दिशा में पहला कदम है। इस प्रकार 'चेनाबर स्त्रोत' न केवल एक सामाजिक उपन्यास है, बल्कि श्रम-संघर्ष, मानवीय करुणा, वर्ग विरोध और औद्योगिक समाज के अंतर्विरोधों को उजागर करने वाला एक ऐतिहासिक साहित्यिक धरोहर है जो आज भी उतनी ही प्रासंगिक है।

संदर्भ एवं सहायक ग्रंथ सूची :

1. गोस्वामी, मामोनी रयसम. चेनाबर स्त्रोत, गुवाहाटी: चन्द्र प्रकाश, 2011, पृष्ठ-6
2. गोस्वामी, मामोनी रयसम. चेनाबर स्त्रोत, गुवाहाटी: चन्द्र प्रकाश, 2011, पृष्ठ-17
3. गोस्वामी, मामोनी रयसम. चेनाबर स्त्रोत, गुवाहाटी: चन्द्र प्रकाश, 2011, पृष्ठ- 7
4. वही, पृष्ठ-62

5. वही, पृष्ठ-71

6. वही, पृष्ठ- 74

7. वही, पृष्ठ-72

8. ठाकुर, डॉ. नगेन, संपा. सौ वर्षोंर असमिया उपन्यास. गुवाहाटी: ज्योति प्रकाशन, आवृत्ति संस्करण, 2018.

9. गोस्वामी, मामोनी रयसम. आधालेखा दस्तावेज. गुवाहाटी: चन्द्र प्रकाश, 2011.

10. बरगोहाईं , होमेन. संपा. असमिया साहित्यर इतिहास, गुवाहाटी: संचालक, आनदंराम बरुआ भाषा कला-संस्कृति संस्था, 2017

कामेंग ई-पत्रिका / KAMENG E-JOURNAL
ISSN: 3048-9040 (Online)
संस्करण I | अंक II | अक्टूबर 2025 – अप्रैल 2026 | अर्धवार्षिक पत्रिका
Edition I | Issue II | October 2025 – April 2026 | Half Yearly Journal

जंगल जहाँ शुरू होता है : आदिवासी जीवन की त्रासदी

दिम्पी दत्त[1]
[1]**शोधार्थी**
हिंदी विभाग
तेजपुर विश्वविद्यालय

This is an open access article under the Copyright (c) 2025 कामेंग ई-पत्रिका

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-Share Alike 4.0 International License.

सहकर्मी समीक्षा जर्नल
Peer reviewed Journal

Page No.: 29- 34

आदिवासी समाज सदियों से अनेक समस्याओं के साथ जूझते हुए आए है। समय के साथ उनके जीवन में कई सारे बदलाव आए हैं। आधुनिक सामाजिक व्यवस्थाओं ने उनके जीवन को अधिक विसंगतिपूर्ण बना दिया है। जिसके कारण वे अब दोहरे जीवन शैली में जीने को मजबूर है। ऐसी परिस्थिति में उनके सामने आर्थिक अभाव तथा अस्तित्व का गंभीर रूप लेकर प्रकट होता है। ऐसी परिस्थिति उनको कई बार गलत रास्तों की ओर धकेल देते हैं। यही यथार्थ को संजीव अपने उपन्यास 'जंगल जहाँ शुरू होता है' प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत किया है। इसमें किस प्रकार आदिवासी समुदाय दोहरे शोषण का शिकार होते है और प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण किस प्रकार डाकू बनने को मजबूर होते है उसको दिखाया है। इसमें आदिवासी जीवन के त्रासदी के साथ सामाजिक व्यवस्थाओं के खोखले स्वरूप को दिखाया गया है।

बीज शब्द: आदिवासी अस्मिता, जल-जंगल-जमीन, विस्थापन, शोषण, संघर्ष, अस्तित्व-संकट, सांस्कृतिक पहचान, उपेक्षा, प्रतिरोध, प्रकृति, हाशियाकरण, दमन, गरीबी, अन्याय, संवेदना, जीवन-संघर्ष, सामाजिक यथार्थ, आदिवासी विमर्श, मानवीय त्रासदी।

संजीव हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध साहित्यकार है। संजीव को आदिवासी साहित्य के प्रमुख कथाकार के रूप में भी जाना जाता है।'जंगल जहाँ शुरू होता है' कथाकार संजीव के बहुचर्चित उपन्यासों में से एक है। इस उपन्यास में कथाकार ने थारू आदिवासी समुदाय के समस्याओं का गहराई चित्रण किया है। संजीव का यह उपन्यास कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। आदिवासी जीवन पर केन्द्रित यह उपन्यास मनुष्य की भावनाओं और पीड़ाओं का साक्षी है, क्योंकि संजीव मानवीय संवेदनाओं के लेखक हैं। "संजीव पर कार्ल मार्क्स के विचारों का गहरा प्रभाव है। इसी कारण उनके साहित्य में शोषकों के प्रति हमेशा ही घृणा की भावना तथा शोषितों के प्रति दया एवं सहानुभूति रही है और शोषकों के विरुद्ध लड़ने की प्रेरणा देने वाली भावना दिखाई देती है।"1 उन्होंने इस उपन्यास में आदिवासी जीवन के असंतोष एवं विद्रोह को उजागर करने का प्रयास किया है। साहित्यकार संजीव ने आदिवासी जीवन के सभी पहलुओं को अपनी रचनाओं में शामिल करने का प्रयास किया है। 'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास के संदर्भ में प्रो. यशवंतकर लिखते हैं- "संजीव ने आदिवासियों की दशा और परिणामों का विवेचन मानवीय संवेदना के परिप्रेक्ष्य में किया हैं, अर्थात् उपन्यासकार ने उनकी त्रासदी और संघर्ष को वाणी देने का प्रमाणिक प्रयत्न किया है।"2

इस उपन्यास की पृष्ठभूमि है 'मिनी चम्बल' के नाम से प्रसिद्ध बिहार के पश्चिम चम्पारण इलाका। यह इलाका पूर्णतः डाकुओं के चंगुल में फँसा हुआ है। डाकू समस्या के साथ-साथ यहां आदिवासियों पर धार्मिक, राजनीतिक शोषण और अत्याचार का वास्तविक स्वरूप भी सामने आया है। इस उपन्यास को एक आंचलिक उपन्यास बनाम आदिवासी जीवन के मर्म के तौर पर भी देख सकते हैं। क्योंकि इसका पूरा कथानक ही अंचल विशेष और यहाँ के आदिवासी समुदाय के लोगों के जीवन- बोध पर आधारित है। इसमें मुख्य पात्र के रूप में 'कुमार' और 'काली' हैं। कुमार एक पुलिस अफसर है, जो 'ऑपरेशन ब्लैक पाईथन' के सिलसिले में उस अंचल में जाता है और काली एक आदिवासी लड़का है, जो इस घटनाक्रम में डाकू बन जाता है। इसके अलावा परशुराम, परेमा, मुरली पांडे, बिसराम, सुन्नर पांडे, मलारी, योगी, नरैना, दुबे आदि गौण पात्र हैं। 'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास संजीव के गहन अध्ययन और शोध का परिणाम है। उन्होंने आदिवासी समाज को गहराई तक जाकर देखा और परखा है। कथाकार के गहन अन्वेषण के कारण ही यह उपन्यास अत्यंत वास्तविक होकर पाठक वर्ग के समक्ष आता है। संजीव संपूर्ण उपन्यास में आदि से लेकर अंत तक ये ढूंढने और दिखाने के प्रयास में लगे हुए हैं कि डाकू जैसी गंभीर समस्या के पीछे का कारण क्या है? और इसके निवारण के क्या उपाय हो सकते हैं? इसके साथ ही आदिवासी समाज में व्याप्त गरीबी, भूखमरी, अंधविश्वास, कुरीति आदि पर भी प्रकाश डाला गया है। दरअसल ये सारी समस्याएँ एक-दूसरे के साथ जुड़ी हुई हैं। इसीलिए समाज की किसी एक समस्या को अचानक से खत्म नहीं किया जा सकता। इसके लिए उचित योजना तथा सुनियोजित प्रयास की आवश्यकता होती है। साथ ही, इन समस्याओं को समाप्त करने के लिए मनुष्य को उन समस्याओं के साथ जुड़कर उन्हें समझना होगा, तभी वह उन समस्याओं का समाधान खोज कर पाएगा। आमतौर पर देखा जाए तो सभी आदिवासी समाजों में व्याप्त समस्याएँ लगभग एक जैसी ही हैं। बस कभी-कभी भौगोलिक स्थिति और आस-पास के सामाजिक परिवेश के कारण इनमें कुछ अंतर दिखाई पड़ता है। इसीलिए हर आदिवासी समुदाय में डाकू या माओवादी जैसी समस्याएँ देखने को नहीं मिलती। झारखंड के आदिवासियों के माओवादी विचारधारा की ओर आकर्षित होने और चंपारण के आदिवासियों के विद्रोही बनने के पीछे का कारण लगभग एक ही है। आदिवासी समाज हर तरफ से उत्पीड़न एवं त्रासदी से घिरा हुआ है, जिसके कारण वह तंग आकर मजबूरन शस्त्र उठा लेते हैं और विद्रोही बन जाते हैं।

चंपारण के आदिवासी समूह सामाजिक व्यवस्था के चलते विवश है। एक तरफ पुलिस और डाकू उन्हें शांति से जीने नहीं देते हैं, तो वही दूसरी तरफ समाज के सम्पन्न और तथाकथित उच्च वर्ग उनका शोषण करता है। इस पूरे उपन्यास में आदिवासी समुदाय को अत्यंत बेबस और असहाय दिखाया गया है। उनके पास दो ही विकल्प हैं, या तो वे पुलिस और डाकुओं के अत्याचारों को सहते हुए एक दिन मर जाएं या फिर परिस्थितियों के विरुद्ध विद्रोह का मार्ग अपनाएं। क्योंकि उन गरीब असहाय आदिवासियों के लिए देश का कानून तो है, किंतु यहाँ की व्यवस्था उसके किसी भी नियम का पालन नहीं करती है। यहाँ के सेठ, डाकू, पुलिस और मंत्री सबकी मिली भगत स्पष्ट रूप से झलकती है। हर कोई अपने स्वार्थ की पूर्ति में लगा रहता है, इस पूरी प्रक्रिया में आदिवासी समुदाय ही सबसे अधिक पीड़ित होता है। अपराध किसी का भी हो, परंतु दंड हमेशा इन्हीं निर्दोष और असहाय आदिवासियों को ही भुगतना पड़ता है। इस पूरे उपन्यास में आदिवासी लोगों की त्रासदी को देखकर ऐसा लगता है कि जैसे आदिवासी के रूप में जन्म लेना ही पाप है।

आदिवासी लोगों को काम के बदले पगार भी नहीं मिलती, जिसके कारण उन लोगों को तो दो वक़्त की रोटी भी मयस्सर नहीं होती। लेकिन वहीं डाकुओं के लिए इस समुदाय के लोगों को भोजन तैयार करना पड़ता है| अगर किसी तरह पुलिस को यह बात पता चलती है तो इन आदिवासियों के ऊपर अत्याचार किया जाता है। अर्थात दोनों तरफ से गरीब आदिवासी ही फंस जाते हैं। आदिवासी इस कदर विवश है कि डाकूओं को अगर खाना न दिया तो डाकू मारते है और दिया तो पुलिस। अर्थात हर तरफ से उनके लिए मौत ही लिखी है। मजबूर आदिवासी करे तो क्या करे? केवल यही नहीं डाकुओं को ढूंढने के नाम पर भी इन आदिवासियों के साथ शारीरिक और मानसिक अत्याचार किया जाता है। साथ ही सम्पन्न वर्ग द्वारा किया गया शोषण है ही। आदिवासी महिलाएं इनलोगों के लिए केवल भोग का वस्तु हैं। आदिवासी स्त्रियों के इज्जत के साथ खिलवाड़ करना इनलगों के लिए बहुत ही साधारण सी बात है। इनके लिए कोई न्याय व्यवस्था भी नहीं है। जब फेंकन दुसाधो की पत्नी का बलात्कार सुन्नर पांडे के साले द्वारा किया गया तब बेचारा फेंकन न्याय के लिए दर-ब-दर भटकता रहा। पर उसे न्याय नहीं मिलता। पंचायत ने राय दिया कि पांडे जैसे उच्च जाति के लोग यह काम नहीं कर सकते। वह थाने गया वहाँ भी कुछ नहीं हुआ। विवश होकर जब वह डाकू परशुराम के पास पहुंचा वहाँ भी वह निराश ही हुआ। परशुराम उसे यह कहा कि "वह चमारों, दुसाधो, धोबियों, कुम्हारों, लोहारों, और नोनियाओं का केस नहीं लेता।"3 अर्थात जातिवाद के चलते इन आदिवासियों का कुछ भला नहीं हो सकता। इसीलिए कुमार जब काली को आत्मसमर्पण के लिए कहता है तब वह कहता है कि-"दूजे मुकदमे और सजा के बाद मेरी जाति नहीं बदल जाएगी, हालत नहीं बदल जाएंगे, मैं फिर उसी दलदल में सड़ूँगा।"4 कुमार ने डाकू समस्या के पीछे के कारण को साफ बताया है-"डाकू समस्या कोई ऊपर का आवरण नहीं है कि आप उसे खरोंचकर फेंक दे। इनकी जड़ों में भूमि सुधार का न होना, ढीला प्रशासन, पोलिटिकल सेल्टर,रोजगार की समस्या, धर्म, टिपिकल भौगलिक स्थिति वगैरह हैं- ये सभी इंटररिलेटेड हैं, सारा कुछ दुरस्त कर दीजिये, रोग खुद-ब-खुद खत्म हो जाएगा।"5 केवल थारू ही नहीं उस अंचल के बाकी आदिवासियों की भी हालत अच्छी नहीं हैं। खेती वह लोग करते है, पर जमीन इनकी अपनी नहीं। कठिन मेहनत के बाद भी दो वक़्त का खाना दूभर होता है। धाँगर अपना दर्द काली से बताता हुआ कहता है-"हमलोगन को अंग्रेज़ बहादुर ले आया था छोटा नागपूर से कभी- जंगल साफ करने के लिए। पहिले तो जंगल-ए-जंगल था न! ऊ जंगल काट-काट के हमरे बाप-दादा खेत बनाए और आज चल के देखो, हामरा पास एक धुर खेत नहीं।"6

नेताओं और पुलिसवालों का दोहरापन यहाँ साफ झलकता है। वह लोग एक तरफ तो डाकू व्यवस्था को खतम करने के लिए 'ऑपरेशन ब्लैक पाइथन' जैसी योजना बनाते है और दूसरी तरफ डाकुओं जैसा काम करके या फिर अपनी पदोन्नति या अन्य किसी दूसरे फायदे के लिए झूठा एनकांटर करके निर्दोष लोगों को मारते है। काली को नहीं पकड़ पाने के बाद उसके बड़े भाई बिसराम को पुलिस पकड़कर ले जाती है और उसके ऊपर तरह-तरह के अत्याचार करती है। इतने अमानवीय अत्याचार के बाद जब पुलिसवालों को लगता है कि अब वह जिंदा नहीं बचेगा तो बिसराम के ऊपर भागने की कोशिश करने का इल्जाम लगाकर पुलिस उसे मार देती है। ऐसे ही अनेक घटनाएँ उपन्यास में देखने को मिलती हैं। जो डाकू आत्मसमर्पण करता है उसका भी झूठा एनकाउंटर दिखाकर अपनी बहादुरी दिखाने में लग जाते हैं। पुलिस और प्रशासन वालों के लिए ये सब बातें बहुत ही साधारण है। ऐसे में कुमार जैसे पुलिस अफसर भी है, जो अपने आदर्श पर टिके रहने का भरपूर प्रयास करता है। परंतु उपरवालों के चलते वह हर वक़्त ठीक तरह से अपना काम नहीं कर पाता। एक वक्त ऐसा भी आता है जिसमें कुमार का भी नैतिक पतन होता है और वह लालची बन जाता है| लेकिन जल्दी ही अपनी संस्कारों के चलते वह उससे बाहर भी आ जाता है। मंत्री दुबे जी तो

ऐसे है, 'ऑपरेशन ब्लैक पाइथन' के लिए वह प्रधानमंत्री से वाह-वाह लेने भी जाते है और डाकू के जरिए ही वह चुनाव जीतते है और उसके छत्र-छाया में ही डाकू पलते भी है।

काली/कालिया से काली सरदार तक का सफर काली के लिए आसान नहीं था। पुलिस, डाकूओं के अत्याचार सहने और भूखे पेट रहने से उसे डाकू बनने का रास्ता आसान लगता है। उसके भैया और भाभी के ऊपर हो रहे अत्याचार को देखकर भी उसके मन में प्रतिशोध का अग्नि जल रही होती है| वह मजबूर था। पर इस पूरे दौर में वह मानसिक अंतर्द्वंद से गुजर रहा होता है। उसके द्वारा किया गया पहला अपहरण के बाद वह अपने साथी नरैना से कहता है-"ऐसा क्या हुआ, नरैना भैया। हमने लाख चाहा कि ऐसा न हो, जब-जब हम पर जुल्म हुआ, मन बेकाबू हुआ, हमने मन को जब्त ही किया- हे माता भवानी, हे देवता पित्तर, हे सोमेश्वर देब,हमको कु मारग से बचना बचाना लेकिन आखिरकार आज..। हमने नहीं चुनी थी यह ज़िंदगी। नहीं बने थे हम इन राहों के लिए। फिर भी देखो...कैसे धकेल दिए गए।"7 काली की इस सफर के जरिये उपन्यासकार डाकू व्यवस्था की सारी सच्चाई पाठकों के सामने लाकर रख दिया है। काली, नरैना जैसे लोग गरीबी से बचने और स्वाभिमान को बचाने के लिए डाकू बनने जैसे गलत रास्ते पर जाने के लिए मजबूर है।

बाहरी लोगों के अलावा अपने समाज में प्रचलित अंधविश्वासों के कारण भी थारू आदिवासी समुदाय कष्ट झेल रहे हैं। इसके अनेक उदाहरण उपन्यास में देखने को मिलते हैं । थारू समुदाय में यह प्रचलित हैकि वह लोग हिरण का मांस नहीं खा सकते और गाय का दूध नहीं पी सकते। जब बिसराम की छोटी बेटी माँ की अनुपस्थिति में भूख में बिलबिला रही थी तब उपायहीन होकर बिसराम उसको गाय की दूध पिला देता है। जिसके कारण उसे बाद में दंडित किया गया। ऐसे ही सांप डँसने पर वे लोग डॉक्टर के पास ले जाने के बजाय ओझा के पास ले जाते है। जिसके कारण बचने की उम्मीद होने के बावजूद व्यक्ति मर जाता है। उपन्यास में केवल अनपढ़ आदिवासी समुदाय के अंधविश्वास को ही नहीं दिखाया गया है। कुमार, पांडेय जैसे पढ़े-लिखे लोग भी अंधविश्वास के इस चंगुल से मुक्त नहीं हो पाते है। इसीलिए दो ऑपरेशन सफल नहीं होने पर कुमार, पांडेय की बातों पर आकर तांत्रिक के पास चला जाता है। इस उपन्यास में बालविवाह, गौना(दहेज) जैसे कु-प्रथा का भी जिक्र किया गया। जिसके कारण इन आदिवासियों को कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। गौना नहीं दे पाने के कारण काली अपनी पत्नी को खो देता है। काली के लिए त्रासदी की बात यह है कि जब वह अपनी पत्नी से मिलता है तब वह किसी और की पत्नी बन चुकी थी। क्योंकि उसकी पत्नी को लड़की बेचनेवाले ने ले जाकर बेच दिया था। उस अंचल से लड़की या औरतों को ले जाकर नेपाल में बेचना एक आम बात है। जोगी(औरतों को बेचने वाला) कहता है-"अब सवाल रहा लड़कियों के मिलने का, तो राम जी की दया से उनकी पैदावार कुछ ज्यादा ही है और अपने यहाँ वह आफत ही समझी जाती हैं..... दहेज की मार है.....अब रहे खरीददार, तो रंडुए, ऐयास, ठेकेदार, बनिए, यहाँ तक कि मास्टर और पुजारी तथा बाल ब्रह्मचारी भी- औरत किसे नहीं चाहिए?"8

इस उपन्यास में धर्म के नाम पर हो रहे विडम्बना को भी दिखाया गया है। डाकू से लेकर सेठ-मंत्री तक सभी लोग धर्म के नाम पर सारे गलत काम कर रहे हैं। बाकी समस्या के साथ-साथ धार्मिक पाखंडों ने आदिवासियों की ज़िंदगी को और पीछे धकेल दिया है। धर्म का प्रयोग यहाँ गलत तरीके से हुआ है। उनलोगों के मन में यह भावना बैठ गयी है कि चाहे जितना भी गलत काम क्यों न करे, उसके बाद पुजा-पाठ, हवन करने पर सब पाप धूल जाता है। इसी मानसिकता के बारे में मुरली पांडे, कुमार को कहता है-"सर, लूट, हत्या और बलात्कार के दागों से जब चुनर

मैली हो जाए तो धर्म की लांड्री में भेज दो। सब मैल धुल जाएगा, जिसे शिवजी उठाकर पी जाएंगे। इसके बाद फिर पाप करने की सहूलियत- जितना चाहो करो।"9 ऐसी मानसिकता के वजह से ही उस समाज में अपराध बढ़ता है| कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से यह एक सफल उपन्यास है। इस उपन्यास में उपन्यासकार संजीव ने पात्रों के अनुसार भाषा का प्रयोग किया है। अर्थात् गाँववालों के लिए भोजपुरी मिश्रित देशज हिन्दी और पुलिस या सरकारी अफसरों के लिए शुद्ध हिन्दी और अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया है। जिसके चलते उपन्यास और अधिक वास्तविक बन गया है। वैसे तो पुलिस और डाकू दोनों ही परस्पर विरोधी है। परंतु इस उपन्यास में दिखाया गया है कि दोनों के कार्यों में अधिक अंतर नहीं है। आदिवासियों के ऊपर शारीरिक-मानसिक अत्याचार से लेकर फिरौती-वसूली तक दोनों पक्ष लगभग एक जैसे काम कर रहे है। इसके लिए ही शायद रूपक के तौर पर पुलिस और डाकू के लिए उपन्यासकार ने एक जैसी खाकी वर्दी की बात कही है। आदिवासी समस्या के साथ-साथ यह उपन्यास हमारी राजनीतिक व्यवस्था पर भी व्यंग करता है। उपन्यास के आरंभ से ही यह बात पता चलती है कि राजनीतिक क्षेत्रों में डाकुओं का परोक्ष रूप से योगदान है। उस इलाके के चुनाव जीतने के लिए डाकुओं का सहारा लेना अनिवार्य है। अपने मुनाफे के लिए डाकू राजनीतिक क्षेत्र में हस्तक्षेप करते है। लेकिन अंत तक आते-आते उस इलाके का सबसे बड़ा डाकू परशुराम चुनाव लड़ता है और वह जीत भी जाता है। यहाँ विडम्बना यह है कि जिसने खुद अनगिनत अपराध किए हैं वही अब मंत्री बनकर उस इलाके की रक्षा करेगा। अर्थात हमारी राजनीति इतनी कमजोर हो चुकी है कि कोई भी अनपढ़, गवार या फिर अपराधी इस क्षेत्र में प्रवेश कर सकता है। इस उपन्यास में एक प्रसंग आता है जिसमें यह दिखाया जाता है कि 'शोले' फिल्म देखने के बाद डाकू किस तरह से गाँव के औरतों को उसके सामने नाचने के लिए विवश करते है| पूरे उपन्यास में उपन्यासकार ने आदिवासी समस्या को बारीकी से दिखाने के साथ-साथ राजनीतिक क्षेत्र की असलियत, प्रचार और मनोरंजन माध्यमों का साधारण जनता के ऊपर प्रभाव जैसे संवेदनशील विषयों के ओर भी पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है।

निष्कर्ष:

वस्तुतः यह उपन्यास आदिवासी जीवन-संघर्ष का एक सशक्त और जीवंत दस्तावेज बनकर पाठकों के समक्ष उपस्थित होता है, जिसमें आदिवासी समाज की पीड़ा, संघर्ष, शोषण, विस्थापन, अस्मिता-संकट तथा जीवन-यथार्थ का अत्यंत मार्मिक और संवेदनात्मक चित्रण किया गया है। उपन्यास केवल आदिवासी जीवन की बाह्य परिस्थितियों का वर्णन नहीं करता, बल्कि उनके अंतर्मन में व्याप्त वेदना, असुरक्षा, उपेक्षा और अस्तित्व-संघर्ष की गहरी प्रतिध्वनि को भी अभिव्यक्त करता है। इसमें स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि किस प्रकार तथाकथित मुख्यधारा का समाज, पूँजीवादी शक्तियाँ, प्रशासनिक तंत्र तथा सत्ता-व्यवस्था आदिवासियों के प्राकृतिक संसाधनों, जल-जंगल-जमीन और सांस्कृतिक पहचान पर निरंतर अतिक्रमण करते रहे हैं। परिणामस्वरूप आदिवासी समुदाय अपने ही परिवेश में हाशिये पर धकेल दिया गया है। उपन्यास में आदिवासी जीवन की त्रासदी केवल आर्थिक अभाव तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय संकटों से भी गहराई से जुड़ी हुई है। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और विकास की मूलभूत सुविधाओं से वंचित आदिवासी समाज अपने अधिकारों की रक्षा के लिए निरंतर संघर्षरत दिखाई देता है। उनकी जीवन-शैली, परंपराएँ, लोक-संस्कृति और प्रकृति के साथ उनका आत्मीय संबंध आधुनिक विकासवाद और उपभोक्तावादी मानसिकता के कारण संकटग्रस्त हो गया है। उपन्याकार ने अत्यंत संवेदनशीलता के साथ यह दिखाने का प्रयास किया है कि आदिवासी समाज को अक्सर हिंसा, विद्रोह और पिछड़ेपन की दृष्टि से देखा जाता है, जबकि वास्तविकता यह है कि वे शोषण, अन्याय और उपेक्षा के विरुद्ध अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष कर रहे

हैं। इस संदर्भ में उपन्यास यह महत्वपूर्ण संदेश देता है कि आदिवासियों की समस्याओं का समाधान दमन, हिंसा या प्रशासनिक कठोरता के माध्यम से संभव नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि उनके जीवन-संदर्भों, सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक मूल्यों और ऐतिहासिक परिस्थितियों को गहराई से समझा जाए। उनके प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण अपनाते हुए उन्हें शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य, भूमि-अधिकार तथा सामाजिक न्याय के समान अवसर उपलब्ध कराए जाएँ। साथ ही उनकी संस्कृति, भाषा और परंपराओं का सम्मान करते हुए उन्हें विकास की मुख्यधारा में उनकी अस्मिता को सुरक्षित रखते हुए सम्मिलित किया जाना चाहिए। अतः कहा जा सकता है कि यह उपन्यास केवल आदिवासी जीवन का साहित्यिक चित्रण भर नहीं है, बल्कि भारतीय समाज और सत्ता-व्यवस्था के समक्ष एक गंभीर प्रश्न भी उपस्थित करता है। यह पाठकों को आदिवासी समाज की वास्तविक समस्याओं से परिचित कराते हुए उनके प्रति सहानुभूति, संवेदनशीलता और मानवीय दृष्टिकोण विकसित करने की प्रेरणा देता है। इसी कारण यह कृति आदिवासी विमर्श के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण और विचारोत्तेजक रचना के रूप में स्थापित होती है।

संदर्भ सूची :

1. पोलेनवार, डॉ. गजानन किशनराव, 'संजीव के कथा-साहित्य में आदिवासी लोक-संस्कृति, पृष्ठ -11, वन्या पब्लिकेशंस, प्रथम संस्करण, 2020

2. नारखेडे, डॉ. स्वाती,'हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श', पृष्ठ-31-32, रोली प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2016

3. संजीव, 'जंगल जहाँ शुरू होता है' पृष्ठ -92, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, चौथा संस्करण, 2019

4. संजीव, 'जंगल जहाँ शुरू होता है'पृष्ठ -139

5. संजीव, 'जंगल जहाँ शुरू होता है' पृष्ठ -146

6. संजीव, 'जंगल जहाँ शुरू होता है' पृष्ठ -91

7. संजीव, 'जंगल जहाँ शुरू होता है' पृष्ठ -96-97

8. संजीव, 'जंगल जहाँ शुरू होता है'पृष्ठ -212

9. संजीव, 'जंगल जहाँ शुरू होता है'पृष्ठ -143

कामेंग ई-पत्रिका / KAMENG E-JOURNAL
ISSN: 3048-9040 (Online)
संस्करण I | अंक II | अक्टूबर 2025 – अप्रैल 2026 | अर्धवार्षिक पत्रिका
Edition I | Issue II | October 2025 – April 2026 | Half Yearly Journal

संविदा अध्यापक

[1]रामेश्वर महादेव वाढेकर 'संघर्षशील'
[1]अध्यापक, पी.जी.टी.
जवाहर नवोदय विद्यालय
वालपोई, तह. सत्तारी,जि.उत्तर
ईमेल:-**rvadhekar@gmail.com**

This is an open access article under the Copyright (c) 2025 कामेंग ई-पत्रिका

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-Share Alike 4.0 International License.

सहकर्मी समीक्षा जर्नल
Peer reviewed Journal

Page No.: 35-40

मैं शहर के प्रसिद्ध सीनियर कॉलेज में तकरीबन दस वर्ष से अध्यापन कार्य कर रहा था। वहां मेरा भविष्य अंधकारमय था,तब भी मैं छात्रों के जीवन में प्रकाश लाने का निरंतर प्रयास करता रहा। मेरा जीवन अंधकारमय इसलिए था कि मैं वहां सी.एच.बी. (संविदा प्राध्यापक) पद पर कार्यरत था। अगले वर्ष संविदा पद पर भी रहता हूं या नहीं,यह कहना भी मुश्किल था। ज़िंदगी में पर्मनंट सहायक प्राध्यापक बन पाऊंगा,ऐसा सपनों में भी नहीं लगता था। क्योंकि पर्मनंट सहायक प्राध्यापक बनने हेतु कम से कम अस्सी लाख रुपए देने पड़ते है। साथ ही राजनीतिक पहचान अलग से।

संविदा पद पर सहायक प्राध्यापक के रूप में नियुक्ति होती है तो तकरीबन डेढ़ लाख रुपए मुश्किल से मिलते थे वर्ष के। काम वर्ष भर, पगार छह माह तक। पगार भी हर माह नहीं,दो-तीन माह के बाद मिलता था। उनमें से भी कुछ पैसें काटे जाते थे।कुछ बोल भी नहीं पाते। क्योंकि अगले वर्ष नहीं लिया तो,यह डर। सब पात्रता यानी एम.ए.,एम.फिल्, सेट,नेट, बी.एड्, पी-एच.डी आदि होने के बावजूद मैं बेरोज़गार ही था असल में। वेठबिगार लोग मुझसे अच्छे थे। वे शांति से नींद तो ले पाते थे; मेरे नसीब में वह भी नहीं था।

मां - बाप की बहुत अपेक्षा थी मुझसे। किंतु मैं अपेक्षा पूरी नहीं कर पा रहा था। उन्हें वर्तमान वास्तव भी नहीं बता सका। क्योंकि वह परेशान होंगे इस खातिर। एक दिन अचानक मित्र का फोन आया। वह बोलने लगा,"हैलो, संघर्ष,क्या चल रहा है आपका"

उधर से आवाज आई,"संघर्ष सर अध्ययन कर रहे है। मैं उनकी पत्नी बोल रही हूं। दो मिनट ठहरिए,उनके पास फोन देती हूं।"

- "जी,कोई बात नहीं।फोन शुरू ही रहने देता हूं।"

- "हैलो,बोलिए।आवाज़ पहचान की लग रही है, लेकिन नाम याद नहीं आ रहा। शमा करना मित्र,मैं इन दिनों बहुत कुछ भूल रहा हूं।"

- "बहुत दिनों के पश्चात फोन आता है तो ऐसा ही होता है मित्र।उत्तर प्रदेश से 'विजय' बोल रहा हूं।आपकी कहानी मासिक पत्रिका में पढ़कर फोन किया था आपसे।उसी दिन से मित्र बने थे हम।"

- "अच्छा,याद आया। कैसे हो आप? सब ठीक-ठाक है न।"

- "हां,अच्छा है।आप कैसे हैं?"

- "मैं भी अच्छा हूं। वहीं सी.एच.बी.सहायक प्राध्यापक पद पर कार्यरत हूं। अब वहां काम करने की मानसिकता नहीं है। क्योंकि परिवार की, मां - बाप की जिम्मेदारी मुझ पर है। मैं बढ़ा बेटा हूं घर का। दूसरा कोई काम करने का सोच रहा हूं।"

- "फोन इसलिए किया था कि आपको कुछ जानकरी देनी थी।"

- "हां,बताईए।"

- "जवाहर नवोदय विद्यालय समिति में संविदा पर पी.जी.टी.पद हेतु विज्ञापन आया है। समझ लीजिए,इसमें साक्षात्कार के माध्यम से आपका चयन होता है तो आपकी दस माह हेतु नियुक्ति होगी। हर माह पैंतीस हजार सात सौ पचास रूपए मिलेंगे। रहने हेतु मुफ्त में कॉटर मिलेगा।साथ ही आपके खाने की व्यवस्था स्कूल के तरफ़ से। हर माह पगार भी मिलेगा।इसपर विचार कीजिए।"

- " मैंने सुना है कि तत्कालीन समय पर्मनंट अध्यापक आने के पश्चात संविदा पद पर कार्यरत अध्यापक को घर भेजते है। साथ ही परिवार लेकर नहीं आने देते। मैं परिवार छोड़कर नहीं रह सकता। उनके साथ रहना चाहता हूं, हर परिस्थिति में।"

- "हां,आपने सही सुना है। लेकिन कभी कभार पर्मनंट अध्यापक बीच में आते हैं। साथ ही ज़्यादातर प्रधानाचार्य परिवार के साथ रहने की अनुमति नहीं देते। किंतु विनंती करने के पश्चात परिवार के कुछ सदस्यों को साथ रखने की अनुमति मिलती है।"

- " मैं फार्म भर देता हूं। देखा जाएगा आगे क्या होता है। जानकारी देने हेतु शुक्रिया मित्र।"

फार्म भर दिया। साक्षात्कार के दृष्टि से अध्ययन करने लगा। दूसरे अध्यापक से साक्षात्कार के संदर्भ में जानकारी लेता रहा। आखिरकार साक्षात्कार की तिथि वेबसाईट पर आ गई। मार्च में साक्षात्कार संपन्न हुआ। साक्षात्कार अच्छा रहा। सिर्फ़ इंतजार था मेरिट लिस्ट का। दिन बीतते गए। आख़िरकार एक दिन पांच बजे फोन आया। मुझे नया नंबर दिखाई दिया। मैंने जल्द से फोन उठाया। मैंने धीरे आवाज़ में कहा,"हैलो,कौन ? कहां से बोल रहे हैं आप ?"

- "पंकज त्रिपाठी।जवाहर नवोदय विद्यालय समिति से बोल रहा हूं।आपका पी.जी.टी.हिंदी संविदा पद पर दस माह हेतु चयन हुआ है। आपको दूसरे राज्य में जाना पड़ेगा। आप समिति में काम करना चाहते हैं तो जल्द से बताईए। नहीं तो मैं दूसरे व्यक्ति को सुअवसर देता हूं।"

- "आदरणीय,समिति में काम करने हेतु मैं तैयार हूं। कब जॉइन करना है ?"

- "आपको ई-मेल पर विस्तार से जानकारी दी जाएगी। अब मैं फोन रखता हूं। मुझे और भी लोगों को फोन लगाना है।"

मैं खुश था। थोड़ा दुःखी भी। किंतु मैंने यह बात किसी को नहीं बताई। मन में अनेक विचार आ रहे थे,क्या करें,कुछ समझ नहीं आ रहा था। मैंने करीबी मित्र की राय ली। वे कहने लगे कि तुझे अवश्य जाना चाहिए। लेकिन मेरा मन राज्य के बाहर जाने हेतु तैयार नहीं था;क्योंकि मां -बाप की जिम्मेदारी मुझपर थी। किंतु माता -पिता ने जाने हेतु मुझे मजबूर किया। आख़िरकार मुझे जाना ही पढ़ा।

1 जुलाई, 2025 को जवाहर नवोदय विद्यालय में ज्वाइनिंग करनी थी। मैं दो दिन पहले से ही घर से निकल पढ़ा। इतवार के दिन दोपहर में जवाहर नवोदय विद्यालय में पहुंचा। प्रधानाचार्य से मिला। उनसे चर्चा की। वे तुरंत बहुत गुस्सा हुए। मुझपर चिल्लाकर कहने लगे कि तुम परिवार साथ लेकर क्यों आए? ऑर्डर पढ़ी नहीं,आपने। उसमें साफ़

लिखा होता है कि संकाय अध्यापक परिवार लेकर नहीं आ सकता। वास्तव में ऐसा कुछ भी लिखा नहीं था। रहना है तो अकेले रहिए, नहीं तो... बाहर बैठो, निकलो जल्दी।

हम सब बाहर बैठ गए। दिन के पांच बज चुके थे तब भी ऑफिस से कोई बुलावा नहीं आया। सभी भूखे थे। मेरी बेटी बहुत रो रही थी। शायद उसे बहुत भूख लगी थी। साथ में तो कुछ भी नहीं था। पत्नी परेशान दिख रही थी। क्या किया जाए ? कुछ समझ नहीं आ रहा था। ऑर्डर में परिवार साथ लेकर नहीं आना है ऐसा उल्लेख होता तो मैं यहां कभी नहीं आता। मैं परिवार छोड़कर नहीं रह सकता।अनेक विचार मुझे परेशान कर रहे थे। मैं कुछ बोल नहीं पा रहा था। मेरे कारणवश परिवार परेशान था। बहुत सा समय बितने के पश्चात चपरासी ने आवाज दी। मैं जल्द से उनके पास गया। तुरंत चपरासी ने कहा कि आपको कॉटर (घर) देने हेतु कहा हैं। सामान लेकर चलिए। सामान देखकर उसने ही कहा कि मेरी स्कूटी लीजिए।उतने में प्रधानाचार्य कॅबिन से बाहर आते हुए दिखाई दिए,मैंने नम्रता से कहा कि शुक्रिया आदरणीय। वे कुछ भी न बोलते हुए आगे बढ़ गए।

देखते-देखते तीन महा बीत गए। अब वहां मेरा मन लग चूका था। कक्षा में बहुत से बच्चें रहते थे। पढ़ाने में मज़ा आ रहा था।आनंद मिल रहा था। वहां अलग-अलग राज्यों से आए हुए अध्यापक थे। बहुत से अध्यापक से पहचान हुई थी। कुछ करीबी मित्र बने।करीबी मित्र में गणित के अध्यापक राज की और मेरी बहुत बनती थी। विचार मिलते थे। निरंतर हम वर्तमान शिक्षा नीति पर चर्चा करते थे। वे मुझे बढ़े भाई की तरह निरंतर मार्गदर्शन करते थे।

दीपावली की छुट्टियां नजदीक आई थी। यानी दो दिनों में लग गई। किंतु पी.जी.टी. अध्यापक अवधारण अवधि में बोर्ड कक्षा को पढ़ाने हेतु पंद्रह दिन रूके थे। एक दिन अचानक प्रधानाचार्य ने राज को कॅबिन में बुलाया। और कहने लगे कि गणित के पर्मनंट अध्यापक का प्रमोशन हुआ है, वे आ रहे है कल। तुम्हे कल ही जवाहर नवोदय विद्यालय छोड़ना होगा। रूक मत,किसी भी हालत में कल। हां,कहकर राज बाहर आया। स्टाप रूम में आकर शांत बैठ गया। चेहरे पर उदासी थी। मैंने तुरंत राज से पूछा," क्या हुआ ? सब ठीक है न।"

- " कुछ नहीं। हां,सब ठीक है संघर्ष भाई। ज़िंदगी में कुछ उतार -चढ़ाव आते ही है।खैर,तू हमरी दोस्ती तो नहीं भूलेंगा ना कभी।"

-"मैं खुद को भूल सकता हूं, तुझे कभी नहीं। किंतु आज तू ऐसी बातें क्यों कर रहा है ? मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा। कोई परेशानी है तो मुझे बता न।भलेही हमरा रिश्ता ख़ून का नहीं, लेकिन खून के रिश्ते से ज़्यादा मायने रखता है हमरा रिश्ता। मैंने भाई माना है तुझे।"

-"कल मुझे किसी भी हालत में जवाहर नवोदय विद्यालय छोड़ना पड़ेगा।"

-"क्यों? क्या हुआ। "

-"पर्मनंट अध्यापक कल आ रहे है स्कूल में।"

-"किंतु तेरी नियुक्ति तो दस माह के लिए हुई थी न।"

-"बीच में कोई पर्मनंट अध्यापक आता है तो वहीं हमारा कार्यकाल समाप्त होता है, ऐसा प्रधानाचार्य कह रहे थे।"

-"यह तो सरासर गलत है।ऐसा बर्ताव तो वेठबिगार के साथ भी नहीं होता है। जो तेरे साथ हो रहा है। शैक्षिक वर्ष के बीच में तुझे कहां काम मिलेगा?"

-" जाने दो मित्र। कोई दूसरा रास्ता ढूंढ लूंगा मैं।जल्दी चल,मुझे यश बेटे का दाखिला निकालना पड़ेगा स्कूल से। "

राज ने शाम तक सब काम पूरा किया। कॉटर (घर) के तरफ देर से निकला। जवाहर नवोदय विद्यालय के गेट में प्रवेश करते ही उसके तरफ़ दसवीं, बारहवीं के छात्र आने लगे। शायद उन्हें सब पता चला था। छात्रों के आँखों में पानी आ रहा था। वे सब कहने लगे कि सर आप हमें छोड़कर मत जाइए। हमें आपकी जरूरत हैं। राज सिर्फ़ देख रहा था,कुछ

बोल नहीं पाया। अंततः इतना ही कहा कि बच्चों अच्छी पढ़ाई करो,मां -बाप का सपना पूरा करो, जीवन में सफल बनो। खुद का ख्याल रखना। अलविदा बच्चों।

राज धीरे-धीरे रास्ते से चल रहा था। अंतर जल्द से खत्म नहीं हो रहा था। उसे बीते हुए दिन याद आ रहे थे। मन में चिंता भी सता रही थी कि पत्नी को कैसे समझाऊं। मन ही मन अनेक चिंता सता रही थी। इतने में घर कब आया,पता भी नहीं चला। राज ने बेल बजाई। कुछ देर बाद दरवाजा खुला। पत्नी ने चिंता भरे स्वर में कहा,"आपको आज बहुत देर हुई। मुझे फोन भी नहीं किया। क्या हुआ ? चेहरा पड़ा क्यों है ?

-"आज कुछ काम था, इसलिए देर हुई। व्यस्तता के वजह से फोन नहीं कर पाया। कुछ नहीं हुआ,काम के वजह से चेहरे पर उदासी आई है।"

-"मैं आपको अच्छी तरह समझती हूं। आपको दुःख छूपाने नहीं आता है। कुछ तो हुआ है। सच- सच बताओं क्या हुआ ?"

-"कल हमें गांव के तरफ़ निकलना होगा। मेरी जगह पर्मनंट अध्यापक आया है। मां -पिताजी, को इसके संदर्भ में कुछ मत बताना । मुझे दीपावली का खुशी का माहौल खराब नहीं करना है। मैं दुःख सह लूंगा। मैं घर पर बैठकर नहीं रहूंगा। कुछ न कुछ काम जरूर करूंगा। बहुत से इंग्लिश स्कूल में पहचान पत्र दूंगा।मुझे खुद पर विश्वास है,काम मिल जाएगा। तू टेंशन मत ले, मैं हूं न। मुझे सिर्फ़ तेरी साथ चाहिएं।"

-"आप मेरे साथ है न, मुझे कोई टेंशन नही। मैं मरते दम तक साथ निभाऊंगी आपकी। मुझे आप पर पूरा विश्वास है कि आप हार नहीं मानेंगे। कुछ न कुछ राआप टेंशन मत लो, मैं भी जॉब करूंगी। सिर्फ़ आप उदास मत रहिए। ज़िंदगी भर हंसते हुए देखना चाहती हूं मैं तुम्हे।"

राज और उसके पत्नी ने रात का खाना खाया। दोनों ने एक दूसरे को मानसिक सहारा दिया। रात के बारह बजे पत्नी सो गई। राज चिंता में मग्न रहा। रात भर सो नहीं पाया।

सुबह हुई। सब जल्दी उठें। घर जाने की तैयारी करने लगे। जल्द से तैयारी की।जाने का समय भी जल्द हुआ। दोनों घर सामान लेकर बाहर आए। उतने में राज ने दुःख भरे स्वर में कहा,"संघर्ष,भाभी हम निकलते है। खुद का और बेटी का ख्याल रखना। हमारे गांव के तरफ़ जरूर आना। हम आपकी राह देखते रहेंगे।"

- "हां,अवश्य आएंगे संघर्ष भाई। आगे कुछ भी बोला नहीं जा रहा था। सिर्फ़ इतना कह पाया कि खुद का ख्याल रखना।"

मेरी बेटी यश को जाते हुए देखकर बहुत रो रही थी। उन्हें जाने मत दो।रोको। जोर-जोर से चिल्लाकर कह रही थी। यश के आँखों में भी पानी था। वह भी रो रहा था। उसे समझाते हुए,खुद रोते हुए पति-पत्नी आगे बढ़ रहे थे।

राज अंधेरे में जाकर एक जगह शांत बैठ गया। मन में अनेक विचार आ रहे थे। कुछ भी काम करने का मन नहीं था। उतने में पत्नी ने आवाज दी, "संघर्ष,स्कूल का समय हुआ है। क्या कर रहे हो ?"

- "मुझे नहीं जाना है आज स्कूल में। मैंने व्हाट्सएप पर संदेश प्रेषित किया है कि मेरी तबीयत खराब है।"

- "जी। नाष्टा क्या बनाऊं आपके लिए ?"

- "अभी कुछ मत बना। तू ही इधर आ।"

- "मैं समझ सकती हूं आपका दुःख।खैर, इन विचारों से बाहर निकल जाइए आप।"

- "एक बात कहूं।"

- "हां,कहो।"

- "राज के साथ जो हुआ वह अपने साथ हुआ तो। मुझे डर लग रहा है।"

- "डरना नहीं,लढ़ना है।आपका नाम ही संघर्ष है। आपको व्यवस्था से संघर्ष करना है।"

- "कब बदलेगी यह व्यवस्था ? मैं थक गया हूं संघर्ष करते-करते। पात्रता होने के पश्चात भी बेरोज़गार बनकर घूमना पढ़ रहा है। वर्तमान संविदा अध्यापक की अवस्था देखकर ओर बुरा लगता है। उस समस्या की वेदना मैं सह रहा हूं।"
- " परिवर्तन होगा,धीरज रखिए।"
-" कब? कितनी पीढ़ी बर्बाद हुई ?ओर कितनी होगी ? किंतु मैं हार नहीं मानूंगा। लढ़ता रहूंगा भ्रष्ट व्यवस्था से।"
- "अब मैं नाष्टा बनाती हूं।आप फ्रेश हो जाइए।"
- "आपने विचार से मुझे फ्रेश किया है। अब पानी से फ्रेश होने की आवश्यकता नहीं है शरीर को। जल्द लाव नाष्टा।"

संघर्ष और पत्नी ने नाष्टा किया। ओर दोनों में बहुत सकारात्मक बातें हुई। दिन जल्द बीतते गए। देखते-देखते अवधारण अवधि का समय खत्म हुआ। दीपावली हेतु घर जाने का दिन तय हुआ। घर जाने हेतु दोनों तैयारी में लग गए। आखिकार दोनों तीन दिन के पश्चात खुद के घर पहुंच गए।

संघर्ष का घर में कहीं मन नहीं लग रहा था। वह राज के सदमे से बाहर नहीं निकल पा रहा था। उसके बारे में ही सोच रहा था। उसे प्रशासन व्यवस्था पर गुस्सा आ रहा था। वह मन ही मन व्यवस्था से प्रश्न पूछ रहा था कि अध्यापक का प्रमोशन शैक्षिक वर्ष के शुरुआती दौर में क्यों नहीं होता ? वे शैक्षिक वर्ष के बीच में ही घर के नज़दीक का जवाहर नवदय विद्यालय क्यों चुनते है ? पर्मनंट अध्यापक संविदा अध्यापक के प्रति सहानुभूति क्यों नहीं दिखाते? संविदा अध्यापक के भावना से क्यों खेलते है? वे समाधानी क्यों नहीं है? ऐसे अनेक प्रश्न पूछना चाहता है।

संघर्ष गांव के रास्ते से अकेला निकल पढ़ा।नई ऊर्जा के साथ। अब भ्रष्ट व्यवस्था में परिवर्तन होने तक न रूकने संकल्प किया था खुद से। परिवर्तन ही उसका मकसद था।वह संघर्षमय रास्ते से निरंतर चलता ही रहा...

कामेंग ई-पत्रिका / KAMENG E-JOURNAL
ISSN: 3048-9040 (Online)
संस्करण I | अंक II | अक्टूबर 2025 – अप्रैल 2026 | अर्धवार्षिक पत्रिका
Edition I | Issue II | October 2025 – April 2026 | Half Yearly Journal

मत्तमयंद सवैया

सैयदा आनोवारा खातून[1]
[1]कवयित्री
विश्वनाथ चारिआलि (असम)
मो: **9678772219**

This is an open access article under the Copyright (c) 2025 कामेंग ई-पत्रिका

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-Share Alike 4.0 International License.

सहकर्मी समीक्षा जर्नल
Peer reviewed Journal

Page No.: 41

रस - श्रृंगार रस पर
अलंकार – अनुप्रास

कानन कुण्डल शोभित मंजुल,
कण्ठ सुशोभित मोतिन माला।
देखत ताकत नाचत गावत,
भावत हैं सबके मन लाला।
गाय चरावत घूमत कुंजन,
ओढ़त सुन्दर कम्बल काला।
हंस सुताँ कगरी पर धावत,
खेलत ग्वालन संग कृपाला।

नैनन नीर बहे सखि मोहन,
जाय बसे परदेश विराने।
मारग देखत रात गई अब,
भोर हुई खग बोल सिराने।

रात जगी कछु नीद न लागत,
ऊठत ही अब माथ पिराने।
मन्मथ मोहि मथा रजनी भर,
भोर उठी तन हाथ फिराने।।

नैन नचावत गाल बजावत,
चैन चुरावत यार चली है।
जे अधराधर पल्लव भींचत,
ते तन भार सँभार चली है।
आँचल मारुत खींझ गिरावत,
देख लली रतनार चली है।
लाज नहीं कछु लागत गोपिन
देख परान विसार चली है।।

कामेंग ई-पत्रिका / KAMENG E-JOURNAL
ISSN: 3048-9040 (Online)
संस्करण I | अंक II | अक्टूबर 2025 – अप्रैल 2026 | अर्धवार्षिक पत्रिका
Edition I | Issue II | October 2025 – April 2026 | Half Yearly Journal

युद्ध की विभीषिका एवं नारी की मन: स्थिति (विशेष संदर्भ 'अंधा युग' की गांधारी)

शाश्वती खुंटिआ[1]
[1]शोधार्थी
अनुवाद अध्ययन विभाग
महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
Email- saswatikhuntia1999@gmail.com

This is an open access article under the Copyright (c) 2025 कामेंग ई-पत्रिका

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-Share Alike 4.0 International License.

सहकर्मी समीक्षा जर्नल
Peer reviewed Journal

महाभारत के प्रमुख पात्रों में गांधारी एक सशक्त स्त्री चरित्र के रूप में अभिव्यक्त हुई हैं। अपनी व्यवहार में नैतिकता और सदाचार गुण के लिए वे शत्रुदल में भी निज माता सदृश सम्माननीय थीं। हिंदी साहित्य के महान रचनाकार डॉ. धर्मवीर भारती अपनी कालजयी रचना 'अंधा युग' में महाभारत के 18वें दिन से लेकर प्रभास तीर्थ में प्रभु की मृत्यु तक की घटनाओं का वर्णन गीतिनाट्य के रूप में प्रस्तुत किए हैं। 'अंधा युग', महाभारत के कथानक से इसलिए भिन्न माना जा सकता है कि 'अंधा युग' के कथानक में मूलतः युद्ध के उपरांत व्यवस्थित समाज में आए अव्यवस्थाओं तथा विघटित मानवीय मूल्यों का परिवर्धन किया गया है। प्रस्तुत प्रपत्र में स्त्री विमर्श के दृष्टि से 'अंधा युग' की गांधारी तथा युद्ध के कारण गांधारी के परिवर्तित विचारधाराओं पर सम्यक् विवेचन किया जाएगा साथ ही गांधारी से आज की नारियों को क्या शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए इस पर भी चर्चा की जाएगी।

Page No.: 42-47

बीज शब्द: गांधारी, अंधा युग, महाभारत, युद्ध, त्रासदी, विभीषिका, कर्त्तव्यबोध विचारधारा, विघटित मूल्यबोध, स्त्री विमर्श आदि।

युद्ध की परिकल्पना-

पृथ्वी पर मानव जाति के बसने एवं सभ्यता के विकास के साथ ही युद्ध किसी न किसी रूप में मनुष्य के ईर्द-गिर्द सर्वदा विद्यमान रहा है। भारतीय समाज में रामायण, महाभारत तथा विभिन्न राजाओं के बीच घटित युद्धों की कथा विगत कई वर्षों से प्रचलित है। भिन्न पक्षों के भिन्न मतों तथा विचारधारा के टकराव से उत्पन्न संघर्षों को हम युद्ध की परिभाषा के रूप में देख सकते हैं। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि व्यक्ति अपने अंतर्मन में भी तरह-तरह के विचारों से युद्ध करता है। जब युद्ध शारीरिक तथा बल प्रयोग करके घटित होता है, तब वह अधिक भयावहता एवं अधिक अनर्थ पैदा करता है। परंतु दुःख के साथ यह स्वीकार करना पड़ रहा की युद्ध की यह स्थिति आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई है। इसका सद्यतम दृष्टांत हम नित्य समाचार पत्रों में पढ़ते हैं।

एक सच्चा साहित्यकार अपने समाज में व्याप्त मिथ कथा-प्रसंगों को ध्यान में रख कर साहित्य रचता है। इस संदर्भ में अतीत की घटनाओं को केंद्र में रखकर वर्तमान समय की त्रासदियों की तरफ इंगित करना साहित्यकार के रचनात्मक प्रखरता को दर्शाता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के अमानवीय आचरण से उत्पन्न क्रूर परिस्थितियां अत्यंत हृदय विदारक घटना थी। तुच्छ स्वार्थ की पूर्ति के लिए निरीह जन साधारण को क्षति पहुंचना यह दर्शाता है की उन्नति की

चोटी पर पहुंचकर भी मनुष्य कितना बर्बर और आदिम है। ऐसे वातावरण में सृजनधर्मी साहित्यकार डॉ. भारती समाज में युगों से प्रचलित नृशंसता की नई परतें खोलने में सक्षम हुए हैं । रामजी तिवारी लिखते हैं "भारती जी इस मूल्य संकट का समाधान किसी प्रतिक्रिया से निर्मित एकांगी दृष्टि में न खोजकर, अतीत और वर्तमान के स्वस्थ संश्लेषण में खोजते हैं। विगत और आगत के स्वस्थ समन्वय में ही वे भावी जीवन के प्रत्यकारी संकेतों का अनुसंधान करते हैं । इसी संतुलित दृष्टि की प्रेरणा से भारती जी आस्थाशील व्यक्तित्व की खोज करते हैं और मानव- भविष्य के प्रति स्वयं आस्थावान होते हैं" ।[1]

युद्ध में नारी की भूमिका-

हमारे वैदिक समाज में स्त्रियों को पुरुषों की भांति शिक्षा का अधिकार प्राप्त था किन्तु धीरे-धीरे इस परंपरा का क्षरण होता गया और स्त्रियाँ शिक्षा के साथ-साथ समाज के सभी अग्रणी अधिकारों से वंचित होती गईं । रेखा कस्तवार के अनुसार "ई.पू. 200 के बाद स्त्री के उपनयन संस्कार बन्द हो जाने के कारण स्त्री की शिक्षा को धक्का लगा। अशिक्षित, अनुभवशून्य, डरी, छोटी उम्र की स्त्री के लिए पति उसका दिशा-निर्देशक बन गया, फिर देवता भी। जीवन पातिव्रत्य और पतिसेवा तक सीमित हो गया। विवाह के बाद भविष्य बदलने की कोई सम्भावना नहीं बची"।[2] बुद्धिजीवी तथा समाज के जागरूक व्यक्ति इस बात को अस्वीकार नहीं करेंगे की नारी सदियों से शोषिता थीं । पतिता होने के बावजूद कीचड़ में कमल खिलने के भांति वो हर परिस्थिति से जूझने तथा निबटने की क्षमता रखती थी। ऐसे में वह युद्धों में भी परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूप से भाग अवश्य लेती थी। युद्ध के कारण जो कुछ भी हो किन्तु नारी अपनी भूमिका सदैव भली-भांति निभाती हुई आई है ।

रामायण युगीन नारियों को अगर हम रामायण महाकाव्य के आधार पर चर्चा करे तो वे अत्यंत सुशील, पति के प्रति समर्पित, भक्ति-प्रेम की प्रतिमूर्ति के रूप में दर्शायी गई है। माता सीता एवं रावण की पत्नी मंदोदरी, कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा, उर्मिला आदि सभी अतुलनीय दृष्टांत हैं। इन सभी के गुणों की उपस्थिति के बावजूद रावण जैसे पुरुष सुंदरता को सर्वोपरि मानता है एवं वह स्वयं सर्वगुणसंपन्न होने के बावजूद अपनी कामना पूर्ति के लिए माता सीता का अपहरण करता है। इसके उपरांत युद्ध की घोषणा होती है। महाभारत काल में विभिन्न नारी पात्रों में प्रमुख पात्र पांडवों की पत्नी द्रौपदी रहीं। भले ही महाभारत के महायुद्ध होने के पीछे कई कारण रहा हो परंतु अपने भ्रातृ-वधू का चीर हरण तथा अपमान करके कौरवों ने युद्ध को आमंत्रित किया। द्रौपदी के अलावा अन्य मुख्य नारी पात्र में पांडवों की माता कुंती एवं कौरवों की माता गांधारी रहीं। माता गांधारी शत्रु पक्षों की माता होने की बावजूद अपने सत्यनिष्ठता, निरपेक्षता तथा साहसिकता के चलते पांडवों में पूजनीय थीं।

रेखा कस्तवार के अनुसार "मध्यकाल में यद्यपि स्त्रियों के शासनतन्त्र में भाग लेने के उदाहरण मिलते हैं। रजिया सुल्तान इस दिशा में महत्त्वपूर्ण नाम है। गौंडवाना की पारानी दुर्गावती, अहमद नगर की चाँद बीबी, अकबर की धाय माहमऊनगा, नूरजहाँ, महाराष्ट्र की ताराबाई इस काल के लीक से हटकर चलनेवाले व्यक्तित्व हैं जिन्होंने प्रशासन के क्षेत्र में अपने होने को प्रमाणित किया"।[3] आधुनिक काल के युद्ध में नारी गुप्तचर तथा विदूषिका आदि के रूप में भी सहायता की है । पर नारी का स्वभाव सर्वदा क्षमाशील व उदार रहा है ।

भारती के 'अंधा युग' में युद्ध की विवेचना-

वैश्विक परिदृश्य में युद्ध एवं उसकी भयावहता से कोई अंजान नहीं हैं। युद्ध एवं कलह सदियों से चलता आया है जो आज भी पृथ्वी के सभी समाज में उपस्थित हैं। एक भिज्ञ साहित्यकार अपने युग के प्रासंगिकता को ध्यान में रखकर ही साहित्य रचता है। ऐसे ही एक महान साहित्यकार डॉ. धर्मवीर भारती हैं। वे अपने युग के स्थिति के अनुसार कालजयी गीतिनाट्य 'अंधा युग' की रचना की जो 70 साल बीत जाने के बाद भी प्रासंगिक है। वस्तुतः यह गीतिनाट्य 1954ई. में प्रकाशित हुआ था एवं इसमें महाभारत के भीषण महायुद्ध के 18वां दिन से 'प्रभु की मृत्यु'

तक की गाथा है। प्रस्तुत गीतिनाट्य में पात्रों को प्रतीकात्मक रूप से दर्शाया गया है। नाटक में भगवान श्रीकृष्ण के पात्र के माध्यम से समाज में न्यूनतम रूप में उपस्थित नैतिक मूल्यबोधों को दर्शाया गया है। 'अंधा युग' शीर्षक से यह आशय है कि हम ऐसे युग में जी रहे हैं जहाँ अधर्म, अशांति, और असत्य आदि चारों तरफ विराजमान है। एक पक्ष हिंसक होने से दूसरे पक्ष भी उतना ही हिंसात्मक प्रतिक्रिया प्रदान करता है। प्रस्तुत गीतिनाट्य के पहले अंक कौरव नगरी में लेखक सामान्य कौरव नगरी के प्रहरी द्वारा कहते हैं कि-

टुकड़े-टुकुड़े हो बिखर चुकी मर्यादा
उसको दोनों ही पक्षों ने तोड़ा है
पाण्डव ने कुछ कम कौरव ने कुछ ज्यादा
यह रक्तपात अब कब समाप्त होना है
यह अजब युद्ध है
नहीं किसी की भी जय दोनों पक्षों को खोना ही खोना है[4]

अर्थात एक पक्ष जितना भी मर्यादा और सत्य पथ का अनुसरण करें परंतु युद्ध के समय सभी पक्ष हिंसक एवं आत्मनियत्रंण खो बैठते है। फलस्वरूप अपनी हानि के साथ ही आम जनता को भी इस बर्बरता के ज्वाला में झोंक दिया जाता है। पांडव निष्ठावान होकर भी अपने भाई-बंधु एवं प्रिय परिजनों को युद्ध में खो बैठते हैं। युद्ध कभी भी किसी समाज के लिए हितकर नहीं रहा है। युद्ध के भयंकर परिणामों को ध्यान में रखकर ही महात्मा गांधी ने समग्र भारतवासियों को अहिंसा का मार्ग अपनाने के लिए जोर दिया था। युद्ध के उपरांत कोई भी स्थिति पहले जैसी नहीं रहती और पहले जैसा बनाने के लिए और भी श्रम, समय की खपत हो जाती है फिर भी पहले जैसी स्थिति नहीं बन पाती है। हाल ही में घटित इस्राइल-ईरान एवं रूस-यूक्रेन युद्ध में यूक्रेन के प्रमुख शहर में मृत्यु का तांडव नृत्य युद्ध की भयावहता को दर्शाता है। इसके बाद इन देशों के मध्य शांतिपूर्ण रहन सहन में उत्पन्न खाईं को भरने में शायद शताब्दियां खप जाए। इस संदर्भ में नाटककार लिखते हैं-

मेहनत हमारी निरर्थक थी
आस्था का,
साहस का,
श्रम का,
अस्तित्व का हमारे कुछ अर्थ नहीं था।[5]

गीति-नाट्य में सत्य को नीचा दिखाकर एवं सत्ता को सर्वोपरि मानने वाले व्यक्तियों की मनोदशाओं का उल्लेख किया गया है। ऐसे एक पात्र धृतराष्ट्र हैं जो अपनी कुंठित एवं शंकित वासना पूर्ति के लिए राजा हो कर भी समग्र राज्य को युद्ध को संकटग्रस्त अवस्था में डाल दिए थे। धृतराष्ट्र कहते हैं

"आज मुझे भान हुआ।
मेरी वैयक्तिक सीमाओं के बाहर भी
सत्य हुआ करता है"
"मेरे वैयक्तिक अनुमानित सीमित जग को
लहरों की विषय-जिह्ववाओं से निगलता हुआ
मेरे अन्तर्मन में पैठ गया
सब कुछ बह गया
मेरे अपने वैयक्तिक मूल्य
मेरी निश्चिन्त किन्तु ज्ञानहीन आस्थाएँ"।[5]

अंधा युग में युद्ध के बाद की गांधारी-

गांधार देश की राजकन्या गांधारी का हस्तिनापुर के राजकुमार धृतराष्ट्र के साथ विवाह हुआ था जो जन्मांध थे । अपने भाग्य को अपनाते हुए वे आजीवन पतिव्रता और उनकी अनुगामी रहीं। साथ ही पति के भांति दृष्टिहीन संवेदनाओं को प्रत्यक्ष रूप से अनुभव करने के लिए अपने आँखों में सदैव के लिए पट्टी बांधी। परंतु आमतौर पर उनके चरित्र के अवधारणाओं की उपेक्षा की गई है । त्याग- बलिदान के प्रतिमूर्ति के अलावा उनके नारी सशक्तिकरण के पक्ष को अपेक्षाकृत अल्प आंका गया है । वे आदर्श पत्नी, नीतिज्ञ, ज्ञानी होने के साथ-साथ युद्धनीति तथा राजनीति कला में भी कुशल थीं । कौरवों एवं पांडवों के मतभेद में वे सर्वदा सत्य तथा धर्म का साथ दिया । महाभारत के महायुद्ध में भी वो अपने ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन के प्रताड़नाओं एवं महत्वाकांक्षाओं के विरुद्ध रहीं परंतु वे युद्ध के चरम परिणति को ठुकरा न सकीं ।

मनुष्य अपने गुण-अवगुण के कारण बाकी प्रजातियों से अलग है। समाज में व्याप्त सामाजिक सरंचनाओं में मनुष्य का बंधा रहना कोई विशिष्ठ बात नहीं है । परंतु कुछ व्यक्ति इन सभी बंधनों से ऊपर उठ कर हमेशा यथार्थ तथा सत्य का मार्ग ही चुनते हैं । ऐसी नारी में गांधारी का नाम सबसे पहले आता है। परंतु 'अंधा युग' में गांधारी का चरित्र चित्रण बाकी ग्रंथों से भिन्न है। सभी ग्रंथों में उनको केवल साध्वी, त्याग तथा बलिदान की देवी के स्वरूप में ही दर्शाया गया है । परंतु इस कृति में युद्ध के बाद उत्पन्न त्रासदी के कारण बदलते हुए एक नारी स्वभाव अथवा एक नारी के मन में उत्पन्न पीड़ा को दर्शाया गया है ।

युद्ध की परिणति गांधारी को कटु एवं भगवान कृष्ण के प्रति अविश्वास दृष्टि को जन्म देती है। जो गांधारी भगवान की सर्वदा उपासना करती आ रही थीं, युद्ध के उपरांत उनके अस्तित्व के प्रति अनास्था प्रकट करती हैं । जो अपने पुत्र को धर्म के मार्ग पर चलने को कहती हैं, अंत में वही दोनों पक्ष में धर्म होने का खंडन करती हैं तथा उन्हें वंचक कहने से भी कतराती नहीं हैं । वो कहती हैं-

"मैंने कहा था दुर्योधन से
धर्म जिधर होगा ओ मूर्ख !
उधर जय होगी ! धर्म किसी ओर नहीं था। लेकिन !
सब ही थे अन्धी प्रवृत्तियों से परिचालित
जिसको तुम कहते हो प्रभु
उसने जब चाहा मर्यादा को अपने ही हित में बदल लिया।
वंचक है"।[6]

अपने सभी पुत्रों को केवल 18 दिन में खोने के बाद वो गांधारी अधिक आक्रामक हो उठती हैं। अधर्म तथा कुकृत्यों का भी परोक्ष रूप से साथ देती हुई नजर आती हैं । परिस्थिति के अनुरूप अत्यंत निर्मम होकर अश्वत्थामा अपराधों को स्वीकार करती हैं साथ ही उसको दयालु बताती हैं ।

"किन्तु वीर है
उसने वह किया है
जो मेरे सौ पुत्र नहीं कर पाये
द्रोण नहीं कर पाये !
भीष्म नहीं कर पाये"! [7]

पुत्र शोक से जर्जरित होते हुए भी अंत तक विजय की आशा नहीं छोड़ती । युद्ध से पहले वे अपने पुत्र को धर्म और विजय का अन्तःसंबद्ध समझाने की कोशिश की थीं पर युद्ध के 18 वे दिन तक आते-आते दोनों पक्ष से धर्म और सत्य का विपक्ष में होना देख कर वो अपने मत में परिवर्तन करती हैं।

"मेरी यह आशा
यदि अन्धी है तो हो
पर जीतेगा दुर्योधन जीतेगा"।

युद्ध के आखिरी पड़ाव में दुर्योधन ने अश्वत्थामा को सेनापति बनाता है जो पांडवों के पाँच पुत्रों को मरने बाद दुर्योधन से मिलने आता है उसी समय दुर्योधन की मृत्यु होती है। गांधारी अपने ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन की मृत्यु से मर्माहत होकर वे अश्वत्थामा को भविष्य में सुरक्षित रखने के लिए उसके तन को व्रज बना देना चाहती हैं ।

संजय, मेरी पट्टी उतार दो
देखूँगी मैं अश्वत्थामा को
वज्र बना दूँगी उसके तन को[8]

प्रतिहिंसावश गांधारी उचित-अनुचित का अंतर न समझ कर श्रीकृष्ण को श्राप देती हैं। जब श्रीकृष्ण श्राप स्वीकार करते हैं, तब उनको प्रभु को दिए श्राप के लिए अपराध का बोध होता है और अगाध ममत्व फिर से बोल उठती हैं।

"रोई नहीं मैं अपने
सौ पुत्रों के लिए
लेकिन कृष्ण तुम पर
मेरी ममता अगाध है।
कर देते शाप यह मेरा तुम अस्वीकार
तो क्या मुझे दुःख होता ?
मैं थी निराश, मैं कटु थी,
पुत्रहीना थी ।[9]

यहाँ लेखक की ओजपूर्ण अभिव्यक्ति को भी दे सकते हैं कि जहां एक माता प्रभु को पुत्र समान असीम प्रेम किया वहीं अपने पुत्र के तथाकथित अपराध एवं विसंगपूर्ण कार्यों से मर्माहत हो कर उनको श्राप देने से भी पीछे नहीं हटती हैं ।

निष्कर्ष-

मानव सभ्यता जब आधुनिक युग में प्रवेश किया तो उद्योग तथा आधुनिकीकरण के माध्यम से उन्नति के चरम शिखर पर पहुंचा गया। बीसवीं शताब्दी ने उज्जल भविष्य के साथ ही विकास की नई संभावनाओं को भी उजागर किया। यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी की मानव प्रायः सभी भौतिक संसाधनों से अपनी आवश्यकतापूर्ति के लिए पूर्ण रूप से सक्षम है। परंतु हमारे भीतर उपस्थित आसुरिक तत्व का वर्चस्व हमको उन्नति के बजाय नीचे गिराने में प्रमुख भूमिका निभाता है। वर्तमान समय में घटित युद्ध यह दर्शाता है की हम अभी भी आदिम काल के अनुरूप दुर्गति के दहलीज पर खड़े हैं। युद्ध में हारने के पश्चात भी मनुष्य प्रतिहिंसा के भावना में प्रज्वलित रहता है और हर संभव अमानवीय कार्य करने का प्रयास करता है। मनुष्य जब तक मनुष्यता को को छोड़ भौतिक संसाधनों के आधार पर स्वयं एवं समाज का गठन करता रहेगा युद्ध की गुंजाइश बरकरार रहेगी । विश्व को युद्ध से रहित करने के लिए मानवीयता को प्राथमिकता देने की आवश्यकता है भौतिक संसाधनों की नहीं। प्रस्तुत प्रपत्र में एक बात यह ध्यानाकर्षित करती है कि नारी अपने ममता में अपने बच्चे के प्रति अपना सर कर्तव्य निभाती है पर समय आने पर

उनके कुकर्मों को उनसे परिचित करवाती है तथा उनको दंड भी देती है। गांधारी जैसी तेजस्वी महिला अपने व चनों तथा कर्म में सत्य मार्ग को हि अपनाया है जिसके चलते वो अपनी बातों को बेवाक हो कर बड़ों तथा सत्ता धारिओं के सामने रखती थीं। परंतु दुख की बात यह की उनकी सलाह को कोई कर्णपात नहीं किया। अंत में इतना साहस रखती थीं की प्रभु परात्पर को भी श्राप दि थीं। आज के नरिओं को उनके चरित्र से साहसिकता, ओजपूर्णता आदि गुणों की शिक्षा ग्रहण करने की आशा की जाती है।

संदर्भ सूची-

1. तिवारी, रामजी. धर्मवीर भारती की साहित्य साधना. संपा. पुष्पा भारती. नयी दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ, 2006. 258. Print.
2. कस्तवार, रेखा. स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ. नयी दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2009. 57. Print.
3. कस्तवार, रेखा. स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ. नयी दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2009. 67. Print.
4. भारती, धर्मवीर. अंधा युग. प्रयागराज: किताब महल, 2016. 3. Print.
5. भारती, धर्मवीर. अंधा युग. प्रयागराज: किताब महल, 2016. 10. Print.
6. भारती, धर्मवीर. अंधा युग. प्रयागराज: किताब महल, 2016. 13. Print.
7. भारती, धर्मवीर. अंधा युग. प्रयागराज: किताब महल, 2016. 65. Print.
8. भारती, धर्मवीर. अंधा युग. प्रयागराज: किताब महल, 2016. 68. Print.
9. भारती, धर्मवीर. अंधा युग. प्रयागराज: किताब महल, 2016. 82. Print.

सहायक ग्रंथ

1. भारती, पुष्पा, संपा. धर्मवीर भारती की साहित्य साधना. नयी दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ, 2006. Print.
2. भारती, धर्मवीर. अंधा युग. प्रयागराज: किताब महल, 2016. Print.
3. राय, गुलाब. भारतीय संस्कृति की रूपरेखा. ग्वालियर: साहित्य प्रकाशन मंदिर, 1949. Print.
4. कुंवर, देवी प्रसाद. धर्मवीर भारती का कथा संसार. इलाहाबाद: अनामिका प्रकाशन, 1998. Print.
5. Dharam Vir. Contemporary Indian Women: Violence and Exploitation. Delhi: New Academic Publication, 1996. Print.

कामेंग ई-पत्रिका / KAMENG E-JOURNAL
ISSN: 3048-9040 (Online)
संस्करण I | अंक II | अक्टूबर 2025 – अप्रैल 2026 | अर्धवार्षिक पत्रिका
Edition I | Issue II | October 2025 – April 2026 | Half Yearly Journal

विवेकी राय और महिम बोरा की कहानियों में चित्रित ग्राम्य जीवन का स्वरूप

देबी देबांगना[1]

[1]**शोधछात्रा**
हिंदी विभाग,
मणिपुर विश्वविद्यालय, कांचिपुर
इम्फाल-795003
फोन न.-8876636151
ईमेल- debanganatezu.1996@gmail.com

This is an open access article under the Copyright (c) 2025 कामेंग ई-पत्रिका

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-Share Alike 4.0 International License.

सहकर्मी समीक्षा जर्नल
Peer reviewed Journal

हिंदी साहित्य की विवेकी राय और असमिया साहित्य की महिम बोरा की कहानियों में गाँव और गाँव का जीवन केंद्र में है। भारत के दो अलग क्षेत्र से होने के बावजूद इन दोनों कहानीकारों की रचनाओं में चित्रित ग्रामीण जीवन में अद्भूद साम्य है। विवेकी राय की लगभग सभी कहानियाँ ग्राम्य जीवन पर केंद्रीत हैं जिनमें प्रमुख है- 'गूँगा जहाज', 'भड़क-दो चित्र', 'पुराने गुलाब नये गावँ', 'नयी कोयल', 'एक दिन रेल हमारी', 'फिल्मी लड़का', 'बुढ़िया','मदारी' और महिम बोरा ने भी अपनी कहानियाँ एटि पुवार जन्म', 'आबुर', 'एइ नदीर सौंते', 'हाड़माल', 'एखन नदीर मृत्यु', 'हरा-जिकार खेल', 'पँइताचोरा' आदि में गाँव की सुंदर आभास चित्रित किया है। यह संयोग भी है दोनों कहानीकार समवयस्क है और उनकी कहानियों में भी बदलते गाँव का चित्रण मिलता है। इस शोधालेख में हम इन दोनों कहानीकारों का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए इनकी विशेषताओं को समझने का प्रयास करेंगे।

Page No.: 48-52

बीज शब्द: आधुनिकता, शहरीकरण, ग्राम्य जीवन, आर्थिक व्यवस्था, सभ्यता, संस्कृति, संवेदना

देश निर्माण की नींव ग्राम से ही होती है। किसी भी देश की सभ्यता, संस्कृति का परिचय गाँव से ही दिया जाता है। गाँव के बिना देश अधूरा एवं अकल्पनीय है। गाँव, भारतवर्ष की आत्मा है। वर्तमान समय में भी भारत की अधिकांश जनसंख्या गाँव के निवासी है। भारत की सांस्कृतिक और आर्थिक व्यवस्था की नींव गाँव से ही है। यहाँ बसने वाले लोगों का जीवन सहज-सरल एवं सादगी से भरपूर है। सादगी से भरपूर यह गाँव के निवासी अपने आप को प्रकृति के अत्यंत करीब रखते हैं, तथा अपने जरूरतों के लिए प्रकृति के ऊपर निर्भर है।

भारतीय ग्राम्य जीवन भारत की आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था का अधार है। ग्राम्य जीवन में प्रचलित लोगों की संस्कृति, परम्परा एवं इसकी विविधता से ही भारत समृद्ध बनता है। परम्परा एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी तक चलती है। परम्परा एक गतिशील प्रक्रिया हैं। बदलते समय के साथ सादगी से परिपूर्ण ग्रामीण जीवन भी मनुष्य की स्वार्थवृत्ति के चलते प्रथम अवस्था में धीरे-धीरे और परवर्ती समय में तेज गति से परिवर्तित होने लगा। इन बदलते समय के साथ लोगों के बीच संवेदनाओं की कमी होने लगी। नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक 'कहानी: नयी कहानी' में लिखा है "संवेदनाएँ किसी मूर्त मानव-व्यक्ति का आधार लेकर खड़ी होती हैं और एक निश्चित संदर्भ में पैदा होती है! यह संदर्भ चाहे सामाजिक हो, चाहे प्राकृतिक सामाजिक संघर्ष के सिलसिले में ही व्यक्ति की संवेदनाएँ छिटकती हैं। व्यक्ति के सामाजिक संघर्ष का रूप बदलता है, तो संवेदनाओं के ढाँचे में भी परिवर्तन आता है। नयी संवेदनाएँ व्यक्ति और उसके समाज के नवीन संघर्ष की सूचक होती है"[1]। संवेदनाएँ वास्तव में मानव मन के अनुभव और जीवन की पृष्ठभूमि पर आधारित होती हैं। इनका जन्म किसी न किसी ठोस संदर्भ में- जैसे सामाजिक या प्राकृतिक परिवेश में होता है। कहानी के कथानक में व्यक्त संवेदनाएँ उस व्यक्ति के सामाजिक संघर्षों से जुड़ी होती हैं। जैसे-जैसे समाज और उसमें रहने वाले व्यक्ति के संघर्ष का स्वरूप बदलता है, वैसे-वैसे उसकी संवेदनाएँ और उन्हें व्यक्त करने के तरीके भी बदल जाते हैं। संवेदनाएँ समाज और व्यक्ति के बदलते संघर्षों की देन हैं, और कहानी इन्हीं नए संघर्षों से जन्मी नई संवेदनाओं को व्यक्त करती है।

विवेकी राय हिंदी साहित्य के एवं महिम बोरा असमिया साहित्य के प्रसिद्ध साहित्यकार थे। दोनों प्रायः समकालीन थे जिसके चलते दोनों के साहित्यों की समयसीमा भी लगभग आस-पास थी। विवेकी राय और महिम बोरा भारतवर्ष के दो अलग क्षेत्र के थे परंतु दोनों की नींव गाँव से जुड़ी थी। एक तरफ विवेकी राय उत्तर प्रदेश के गाजीपुर के निवासी थे एवं दूसरी तरफ महिम बोरा असम के नगाँव जिले छोटे से गावँ से थें। परंतु दोनों की कहानियाँ भारत के ग्रामीण कथानक पर आधारित है। दोनों कहानीकार का ग्रामीण जीवन से गहरा लगाव था, जिसके चलते उनकी कहानियों में ग्राम्य जीवन की मिट्टी की गंध पूर्ण रूप से थी। छोटे-बड़े दिन-प्रतिदिन घटने वाले साधारण सी घटनाओं को असाधाण रूप से दोनों साहित्यकारों ने अपनी कहानियों का कथानक बनाया। दोनों कहानीकार ने गाँव में अपना बचपन बिताने के कारण अपने साहित्य में भी प्रमुखता से इसका उल्लेख किया है। विवेकी राय और महिम बोरा भारत के दो अलग क्षेत्रों के होने के बावजूद उनकी कहानियों में वर्णित भारतीय गाँवों की यथार्थ चित्रण में कभी ऐसा प्रतीत नहीं होता है। यह भारत के दो अलग क्षेत्र के नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारतवर्ष की हर एक गाँव की कहानी है। यह क्षेत्र विशेष न होकर भारतवर्ष से जुड़े कोटि-कोटि लोगों की कहानी है। दोनों साहित्यकार की रचनाएँ माध्यम है, जो समाज के सामने इन घटनाओं को उजागर करती है।

ग्रामीण जीवन में आने वाले तमाम परिवर्तन मनुष्य के स्वार्थवृत्ति के कारण है। समाज परिवर्तनशील है परंतु परम्पराओं का खंडन कर लोगों के बीच आने वाले तमाम परिवर्तन एवं रिश्तों में बदलाव कहीं न कहीं गाँव के सादगी को ग्रसित कर रही थी। लोगों के बीच रहने वाले संवेदनात्मक लगाव धीरे-धीरे बदलना शुरू हुआ। आधुनिकता एवं शहरीकरण ने साधारण गाँव के लोगों को धीरे-धीरे बदलना शुरू किया। यह बदलाव निरंतर वर्तमान समय तक चला आ रहा है। विवेकी राय ने लिखा है **"बहुत कठिन है बदलते गाँवों की पकड़। पकड़ते-पकड़ते वह बदल जाता है"**[2]। बनावटी बदलाव की पकड़ से धीरे-धीरे साधारण गाँव के लोग तमाम प्रयासों के बाद भी निकलने में असमर्थ हो रहे थे। सरल और साधारण सी गाँव में बाहरी चमक-धमक, कृत्रिमता और विकृतियाँ आने लगी। भारतीय समाज प्राथमिक रूप से ग्रामीण समाज ही था, परंतु बदलते समय के साथ साथ नगरीकरण बढ़ा। भारत के बहुसंख्यक लोग आज भी गाँव में रहते हैं। स्वतंत्रता के बाद लोगों के मन में धीरे धीरे नगरीकरण के प्रति जाने लगी। लोग परम्परा और प्रगति, अंधविश्वास और विज्ञान के बीच जुझने लगे। साधारण गाँव के लोगों के लिए यह सहज नहीं था कि अचानक से आने वाले इस परिवर्तन को किस प्रकार

स्वीकार करे। शहरीकरण की हवाँ ने गावों को शहर के साथ यातायात, नौकरी के माध्यम से जोड़ा। लोग गाँव से रोजी-रोटी और नौकरी के लिए शहर के तरफ जाने लगे। यह वर्तमान समय में भी निरंतर चली आ रही है। गाँव के लोगों की जो सहज-सरल स्वभाव था वह धीरे-धीरे नष्ट हो गया था। स्वार्थ, अहं की भाव लोगों के मन में आने लगी। यह विकास की हवा साधारण गाँव के निवासियों के लिए आशीर्वाद और श्राप दोनों बनने लगा।

विवेकी राय ने अपनी कहानी 'गूँगा जहाज', 'भड़क-दो चित्र', 'पुराने गुलाब नये गावँ', 'नयी कोयल', 'एक दिन रेल हमारी', 'फिल्मी लड़का', 'बुढ़िया' आदि कहानियों में गाँव के बदलते स्वरूप दो स्पष्ट रूप से दिखाया है। इसी प्रकार महिम बोरा ने अपनी कहानियाँ 'एटि पुवार जन्म', 'आबुर', 'एइ नदीर सौंते', 'हाड़माल', 'एखन नदीर मृत्यु', 'हरा-जिकार खेल', 'पँइताचोरा' आदि कहानियों में ग्रामीण समाज के बदलते स्वरूप को दिखाया है। भारत के गाँवों में बसने वाले लोग साधारण मानसिकता के होते हैं, उनके मन में कोई भी कृत्रिमता की झलक देखने को नही मिलती परंतु बदलते समय के साथ साथ वे अपने आप को भी बदलने लगे। विज्ञान के आगमन से वे परम्पराओं को कहीं धीरे-धीरे भूलने लगे थे। गाँव के लोगों में किसी भी नए सामान के लिए हमेशा कौतूहल का भाव रहता है। गाँव में आने वाले नये चीजों के लिए वे हमेशा आश्चर्य से देखते हैं। 'भड़क: दो चित्र' कहानी में एक साइकिल के आगमन से लोगों के मन में बड़ने वाले उत्सुकता और कौतूहल को दिखाया गया है। शहरों के लिए साधारण सी लगने वाली साइकिल जब पहली बार गाँव में आया तब लोगों के मन में होने वाले कौतूहल और सब लोगों के द्वारा देखने वाले सरलता को विवेकी राय ने अपनी कहानी में प्रस्तुत किया है। **"कुछ ऐसे गाँव हैं, जहाँ अगर कोई आदमी पाजामा अथवा सूट पहनकर जाये तो वहाँ के कुत्ते भौंकने लगेंगे। उन्होंने ऐसा पहनावा देखा ही नहीं कभी। इसी प्रकार उस दिन जाना कि ऐसे भी छोटे-छोटे गाँव है, जहाँ साइकिल चली गयी तो न केवल उस गाँव के लड़के ताली बजाते और शोर करते देखने के लिए दौड़, आपितु वहाँ के बकरे-बकरियाँ भी तड़ातड़ पतली रस्सियों को तोड़कर भाग चली"।**[3] गाँव के लोगों के लिए पजामा अथवा सूट पहनकर किसी व्यक्ति का आना अत्यंत बड़ी और आश्चर्य की बात होती है। जब गाँव में साइकिल आई तब छोटे बच्चे से लेकर बड़े तक भौचक्के हो गए तथा साइकिल के पीछे-पीछे बच्चे ताली बजाकर दौरने लगें। बच्चे और बड़ों के साथ-साथ गाँव के बकरी कुत्ते भी उनके पीछे-पीछे भागने लगे। शहर के लिए साधारण सी लगने वाली यह बात गाँव के लोगों के लिए आश्चर्य और कौतूहल की विषय बन जाती है। पहली बार किसी नये सामान की आने की खुशी और कौतूहल की वर्णन महिम बोरा ने अपनी कहानी "हाड़माल" में दिखाया है। **"शुन ताहानिर कथा। तहँत तेतिया सँचते नाइ। एइखन गाँवत मोर तेतिया नतुन चाइकेल। सेइबार मरापाटर दाम पाइ नतुन चाइकेल किनि लौछिलोँ"।**[4] अर्थात कहानी का नायक टंकेश्वर सोचता है वह अपनी साइकिल की कहानी अपने पोते-पोतियों को भी कहेगा, जब वह उस समय पहली बार अपनी साइकिल बजार से खरीदकर गाँव में लाया था तब पूरे गाँव में बस उसी के पास एक नई साइकिल थी। उस समय जूट की खेती अच्छे दाम में बिक्री हुई थी और उसी के पैसे से ये साइकिल मैंने शहर से खरीदा था। एक साधारण- सी लगने वाली साइकिल भी गाँव के लोगों के लिए बहुत ज्यादा गौरव और महत्वपूर्ण विषय बन जाती है। परिवर्तित गावों में साइकिल की आगमन भी बहुत ज्यादा महत्वपूर्ण विषय बन जाती है।

विवेकी राय की अन्य एक कहानी है 'पुराने गुलाब नये गाँव' इस कहानी में बढ़ती हुई आबादी के कारण गाँव भी विस्तारित होती जा रही है। जहाँ भी खाली जगह मिले वही लोग बसने लगे है। जिसके कारण पुराने गाँव का स्वरूप बदलता जा रहा है। नदी के किनारे में बढ़ती बस्ती के कारण लोगों को तमाम असुविधाओं का सामना करना पड़ रहा है। **"पीपल कट गया तो काफी जगह निकल आयी। दूखी के लड़कों ने मिट्टी भरकर सारी खुली जमीन छेंक ली। बाबू सहाब भी नहीं बोले कि उनकी परजा बढ़ रही है"।**[5] जगह की अभाव से लोगों की खेलने कूदने के लिए मैदान भी कम होता गया है। **"गाँव रबर की तरह बढ़ता जाये। छोटी जातियाँ एक से इक्कीस**

होती जावें। फैमिली-प्लानिंग यहाँ तक आते-आते थक जाये"।[6] गाँव की बढ़ते आबादी के साथ आज लोग भी विरक्त हो चुके हैं। नदी का तट भी बढ़ती आबादी से नहीं बच पाया है। स्वतंत्रता के बाद प्रगति की जो लहर गावों में आई उससे प्रकृति का भी भारी मात्रा में नुकासान हुआ। महिम बोरा ने अपनी कहानी 'एखन नदीर मृत्यु' में दिखाया है। कैसे बदलते समय के साथ-साथ प्रगति के आगमन से नदियों में पूल बंधना भी आरम्भ हुआ। शहरों से गाँवों में यातायात के लिए सड़क आई और साथ ही कलंग नदी में पूल बांधने का काम शुरू हुआ। कहानी के पात्र धनेश्वर कहता है **"एनेखन स्वाधीन देश ह'ल ऐ- जीया कलंगखन मारि पेलाले। एइ कलंगपारर माछुवौ राइजखनको ये मारि पेलाले एइ चकु थका धेंदेलाहँते देखा नाइ नेकि?"[7]** अर्थात देश की स्वतंत्रता के बाद जो प्रगति की लहर गाँव में आई उसमें जीवित नदी में भी पुल बनाकर मार डालने की कोशिश की जा रही है। आँखे होने के बाद भी लोगों को दिखाई नहीं दे रहा है कि इस पुल से गाँव के लोगों को और मछुआरों के जीवन में कितनी परेशानियाँ आयेगी। उनकी आय का स्त्रोत ही बंद हो जाएगा।

गाँव के बदलते स्वरूप में पुराने गाँव टूटकर खत्म हो चुके हैं। लोगों के चिंतन में भी एक भारी बदलाव आया। लोगों के बीच का प्यार, आंतरिकता, परस्पर लोगों के बीच की मित्रता धीरे-धीरे खत्म हो चुकी थी। लोग अपने स्वार्थ के आगे कुछ नहीं सोचते थे। नयी पीढ़ी में त्याग की भावना, कर्तव्य परायण की भावना खत्म हो चुकी थी। उच्छृंखलता के कारण नयी पीढ़ी अनुशासनहीन हो चुकी थी। विवेकी राय की कहानी 'फिल्मी लड़का' का मुख्य पात्र अपने शिक्षा को पूरा न करके फिल्म की दुनिया में ही डूबे रहता हैं। 'बुढ़िया' कहानी में टूटते पारिवारिक सम्बंधों को दिखाया गया है। आधुनिकता की हवा से गाँव के लोगों के जीवन में आने वाली कड़ुवाहट को दिखाया गया है। इसी प्रकार महिम बोरा ने भी अपनी कहानियों में बदलते रिश्तों को दिखाया है। 'आबुर' कहानी में फिल्मों में दिखाये गये नग्न अभिनेत्रियों को देखकर आने वाली पीढ़ियों के मन में होने वाले दायित्वहीनता, दूसरों के ऊपर निर्भर होने वाले व्यक्तित्व को दिखाया है। परम्परागत समाज की पहले जैसी आंतरिकता और प्यार के अभाव को महिम बोरा ने अपने कहानियों के माध्यम से दिखाया है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि आधुनिकता के दौर में गाँव के लोगों की जीवनशैली में जो परिवर्तन आया वह कहीं न कहीं शहरीकरण का प्रभाव है। परिवर्तन की हवा से गाँव में आने वाले बदलाव को विवेकी राय और महिम बोरा ने अपनी कहानियों के माध्यम से उजागर किया है। स्वतंत्रता के बाद गाँव के जीवन में और लोगों में आने वाली तमाम परिवर्तन को दोनों कहानीकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से दिखाया। मशीनीकरण और आविष्कारों से लोगों का जीवन सुगम बना परंतु इसके साथ साथ तमाम परेशानियों का भी सामना लोगों को करना पड़ा। दोनों लेखकों ने अपनी कहानियों के माध्यम से परिवर्तन की हवा के कारण होने वाली समस्याओं पर भी अपनी चिंता प्रकट की है। विवेकी राय और महिम बोरा ने ग्रामीण जीवन में आने वाले बदलाव को स्वागत तो किया परंतु साथ ही साथ आने वाली विकृतियों की समालोचना को भी अपनी कहानियों के माध्यम से उजागर किया।

संदर्भ:

---

[1] नामवर सिंह, कहानी : नयी कहानी, लोकभारती प्रकाशन,इलाहावाद, संस्करण- 2023 ई. , पृ.सं. - 47,

[2] विवेकी राय, आम रास्ता नहीं है, प्रभात प्रकाशन,नई दिल्ली, संस्करण- 1988 ई. पृ.सं.-99,

[3] पृ.सं.- 332,

[4] सं.हिरेन गोहाँइ, गल्प समग्र: महिम बोरा, बनलता प्रकाशन, गुवाहाटी, संस्करण-2012 ई., पृ.सं.-121

[5] विवेकी राय, सामलगमला, विश्वविद्यालय प्रकाशन,वाराणासी, संस्करण- 2011 ई. पृ.सं.-383

[6] वहीं, पृ.सं.- 383

[7] सं.हिरेन गोहाँइ, गल्प समग्र: महिम बोरा, बनलता प्रकाशन, गुवाहाटी, संस्करण-2012 ई., पृ.सं.-173,

कामेंग ई-पत्रिका / KAMENG E-JOURNAL
ISSN: 3048-9040 (Online)
संस्करण I | अंक II | अक्टूबर 2025 – अप्रैल 2026 | अर्धवार्षिक पत्रिका
Edition I | Issue II | October 2025 – April 2026 | Half Yearly Journal

अनुदित कहानी: चील की बेटी

अनुवादकः मनमी बरठाकुर[1]
[1]सहकारी अध्यापिका
हिन्दी विभाग
जगन्नाथ बरुआ विश्वविद्यालय, जोरहाट

This is an open access article under the Copyright (c) 2025 कामेंग ई-पत्रिका

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-Share Alike 4.0 International License.

सहकर्मी समीक्षा जर्नल
Peer reviewed Journal

Page No.: 53-57

मूलः असमिया, लोकसाहित्य

रचनाकारः लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ

लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ का जन्म सन् 1864 में असम के ऐतिहासिक जिला शिवसागर के एक प्रसिद्ध परिवार में हुआ था। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति रहे हैं। उन्होने एक साथ कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, जीवनी, निबंध आदि सभी विधाओं में अपनी कलम चलाई है। असमिया साहित्य तथा लोकसाहित्य के क्षेत्र में लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ का स्थान सर्वोपरि रहा है। असमिया साहित्य के स्वर्णयुग नाम से ख्यात जोनाकी युग में 'जोनाकी पत्रिका' के माध्यम से उनकी साहित्यिक प्रतिभा प्रकाश में आयी। बेजबरुआ के कहानियों में असमिया लोकजीवन की परम्परा प्रतिफलित होती है। लोककथाएँ प्रायः काल्पनिक होती है परंतु उसका सार समाज सापेक्ष होता है। बेजबरुआ की कहानियाँ इस मामले में अति निपुण है। कोई भी व्यक्ति लोक कथाओं के संबंध में उनकी उपेक्षा नहीं कर सकता। उनकी कुछ प्रमुख रचनाएँ है- 'बुढ़ी आईर साधु', 'कोका देउता आरु नाति लोरा', 'जुनुका' आदि। प्रस्तुत कहानी उनकी लोक कहानियों का संग्रह 'बुढ़ी आईर साधु' में 'सिलोनी जियेकर साधु' शीर्षक से संकलित है। इस ग्रंथ मं कुल तीस कहानियाँ (लोक कथाएँ) संगृहित है। इस महान साहित्यकार की तुलना आधुनिक हिन्दी साहित्य के जनक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से होती है। जिन्होने असमिया साहित्य के आधुनिकीकरण में अपना अमुल्य योगदान दिया है। सन् 1938 में डिब्रुगड़ में इनका निधन हुआ।

अनुदित कहानीः

एक देश में एक कुम्हार रहता था। उसके पास बहुत धन- दौलत था। परन्तु उसका कोई पुत्र संतान नहीं था। उसकी पत्नी जब भी गर्भवती होती, हर बार वह एक कन्या संतान को ही जन्म देती थी। इस बात से कुम्हार हमेशा उदास रहा करता था। कुछ दिनों बाद जब कुम्हार की पत्नी फिरसे गर्भवती हुई, तो उसने अपनी पत्नी से कहा, "अगर

इस बार भी तुमने कन्या संतान को जन्म दिया, तो मैं तुम्हे नागा बाजार में बेच दूँगा।" यह सुनकर पत्नी घबरा गई। उसकी प्रसव की समय पास आ रहा था, इसलिए कुम्हार की पत्नी अपने मायके चली गई। परन्तु दुर्भाग्यवश उसने इसबार भी एक कन्या संतान को ही जन्म दिया। वह भय से काँप उठी, क्योकि उसके पत् ने पहले ही उसे धमकि दे रखी थी। उसने बिना समय गवाये पति को पता चलने से पहले ही नवजात बच्ची को एक मिट्टी के बर्तन में रखकर, उसे पुराने कपड़ों से ढँक दिया उपर से और एक ढक्कन लगाकर बर्तन के साथ साथ अपनी छोटी सी बच्ची को नदी में प्रवाहित कर दिया। मिट्टी का बर्तन नदी में धीरे धीरे बहता हुआ चला गया। उसी समय एक धोबी नदी किनारे कपड़े धो रहा था। उस धोबी की नज़र उस नदी में तैरती हुई बर्तन पर पड़ी। उस बर्तन के अंदर क्या है यह देखने के लिए धोबी तैरकर बर्तन के पास गया और ढक्कन खोल कर देखा तो वह आश्चर्यचकित रह गया। उसने देखा कि नदी में तैरती बर्तन में किसीने एक नवजात बच्ची को मरने के लिए छोड़ दिया है। धोबी ने अपने मन में ही निश्चय किया कि वह उस बच्ची को गोद लेगा। उसने ढक्कन हटाया, बर्तन को पकड़ा और धीरे- धीरे पार की ओर तैरने लगा। जब वह पार की ओर आ रहा था, तभी अचानक एक चील आकर बर्तन से बच्ची को पकड़ लिया और उड़ गई। एक ऊँचे पेड़ पर चील ने अपना घोंसला बनाया हुआ था। उसने बच्ची को वहीं रखा। उस नन्ही सी बच्ची को देखकर चील का मन स्नेह से भर गया। इसलिए उसने बच्ची को पालने का निश्चय कर लिया।

रोज़ाना चील को जो भी अच्छा खाना मिलता, वह उस पर झपट पड़ती और लड़की को खिलाने के लिए ले आती। इस तरह चील धीरे- धीरे उस बच्ची को बड़ी करती गई। अगर चील को कहीं धूप में सुखाया हुआ कोई बढ़िया कपड़ा दिखाई देता, तो वह उसे अपने चोंच से उठाकर ले आती है और बेटी को पहनने के लिए देती है। एक दिन, एक राजकुमारी नदी में नहाने के लिए आयी और नदी में उतरने से पहले अपनी गहने नदी के किनारे उतार कर गयी। आसमान पर उड़ते हुए चील ने उसे देखा और तुरंत उन गहनों पर झपट्टा मारा और उन्हें अपनी बेटी के लिए ले आई। इस तरह वह अपनी बेटी के इस्तेमाल के लिए कंघी, शीशा और तरह- तरह के सौंदर्य प्रसाधन लेकर आने लगी। धीरे-धीरे वह बच्ची पेड़ की डाल पर ही बड़ी होती गई और वह सुंदरता में मानो परी जैसी लगने लगी है। एक दिन चील ने उससे कहा, "मेरी प्यारी बेटी, अब तुम बड़ी हो गई हो। मैं रोज़ तुम्हें अकेला छोड़कर बहुत दूरी तक निकल जाती हूँ। इसलिए मुझे तुम्हारी सुरक्षा की बहुत चिंता होती रहती है। आज से, जब भी तुम्हें डर लगे या मेरी ज़रूरत हो, तुम मुझे इस तरह से बुलाना, मैं तुरंत तुम्हारे सामने आकर हाज़िर हो जाऊँगी-

पत्ते हवा में हिलते हैं,
चील माँ मेरे पास आती है।

एक दोपहर, चील की बेटी पेड़ की एक शाखा पर बैठकर अपने बालों में कंघी कर रही थी। लगभग उसी समय, एक व्यापारी उस रास्ते से गुजर रहा था, वह धूप में थका हुआ महसूस कर रहा था और आराम करने के लिए पेड़ के नीचे बैठ गया। उस जगह पर कोई आदमी नहीं था। कहीं से एक बाल उड़कर उसकी गोद में आ गिरा। वह उसे देखकर हैरान हुआ और उस बाल को उठा लिया। बाल काफी लंबा था, उसने इसे मापकर देखा तो बाल की लंबाई सात फुट थी। व्यापारी ने चारों ओर देखा और सोचा कि यह बाल कहाँ से आ सकती है। उसी समय, उसने पेड़ की ओर देखा। वहा उसने एक सुंदर लड़की को पेड़ की एक शाखाओं पर बैठकर अपने बालों में कंघी करते देखा। व्यापारी आश्चर्यचकित हुआ और उसने पूछा, "तुम कौन हो? कोई देवता या एक इंसान? या एक परी? या कोई राक्षसी, मुझे अपने बारे में बताओ? तुम इतनी दोपहर में पेड़ की डाली पर क्यों बैठी हो?" इससे पहले, लड़की ने कभी किसी इंसान को नहीं देखा था। इस प्रकार, भयभीत लड़की यह तय नहीं कर सकी कि जवाब में क्या कहे और उसने घबराकर अपनी माँ को पुकारा।

जैसे ही उसने आवाज़ लगाई, चील कहीं से उड़कर तुरंत उसकी बेटी के सामने आ गई। उसने अपनी बेटी से पूछा कि उसने क्यों बुलाया , तो बेटी ने उस आदमी की ओर इशारा किया। चील ने उस नौजवान और सुंदर व्यापारी को देखकर सोचा कि अगर वह अच्छा आदमी निकला, तो वह अपनी बेटी का विवाह उससे करा देगी। ऐसा सोचकर चील नीचे आई और व्यापारी को अपनी बेटी के बारे में सब कुछ विस्तार से बताने लगी।व्यापारी ने चील से कहा, "मेरे पास बहुत धन है। मैं एक धनी व्यक्ति हूँ। परन्तु मेरी पहले से ही सात पत्नियाँ हैं। अगर तुम बिना किसी द्वेष के अपनी पुत्री का विवाह मुझसे कर दोगे, तो मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मैं उसे सुखी और संतुष्ट रखूँगा। मैं उस पर कभी दुःख नहीं आने दूँगा।" व्यापारी की बातें सुनकर, उसने उसके प्रस्ताव पर सहमत होने से पहले कई बार सोचा। उसने अपनी पुत्री को बहुत समझाया और उसे नीचे लाकर व्यापारी को सौंप दिया। चील रो पड़ी और उससे विनती करने लगी कि वह लड़की को किसी भी प्रकार का कोई दुःख न दे। उसने अपनी पुत्री से भी कहा, "प्रिये, जब भी तुम्हें मेरी आवश्यकता हो, मुझे उसी प्रकार बुलाना जैसा मैंने तुम्हें सिखाया है, मैं तुम्हारे सामने उपस्थित हो जाऊँगी।"

इस प्रकार, व्यापारी चील की बेटी को अपने घर ले आया और उसे प्यार और देखभाल से रखने लगा। लेकिन उसकी सुंदरता देखकर, बाकी पत्नियों ने सोचा कि इतनी सुंदर पत्नी पाकर व्यापारी उनसे ऊब जाएगा। ऐसा सोचकर, वे सातों चील की बेटी से ईर्ष्या करने लगीं और उसे कष्ट देने लगीं।

एक दिन सातों पत्नियाँ इकट्ठा हुईं और चील की बेटी से बोलीं, "क्या तुम खुद को कोई सुंदर परी समझती हो? क्या हम घर का सारा काम करेंगे और तुम्हारे लिए खाना बनायेंगे है ताकि तुम बैठकर खा सको? जाओ, आज तुम खाना बनाओ।" उसने अपनी ज़िंदगी में कभी खाना बनाया ही नहीं। इसलिए वह चावल नहीं बना पा रही थी। कोई और उपाय न मिलने के कारण, वह रोती हुई घर के पिछे केले के बाग में चली गई। वहाँ बैठकर उसने अपनी माँ को पुकारने लगी ,

"हवा में केले के पत्ते नाचते हैं,
चील माँ मेरे सामने प्रकट होती हैं।"

जैसे ही उसने ऐसे पुकारा, चील उसके सामने आ गई। चीलने अपनी बेटी से पूछा, "क्या हुआ? तुमने मुझे क्यों बुलाया?" बेटी ने उत्तर दिया, "माँ, मेरे पति की दूसरी पत्नियों ने मुझे चावल बनाने के लिए कहा है। मुझे खाना बनाना नहीं आता। अगर मैं खाना नहीं बनाऊँगी, तो वे मेरे पति के सामने मेरे बारे में बात करेंगी और मुझे नहीं पता कि वे मुझे और क्या करने के लिए कहेंगी।" अपनी बेटी की बातें सुनकर, माँ ने कहा, "बेटी, किसी भी बात से डरो मत। मेरी बात सुनो, मैं तुम्हें चावल बनाने का तरीका बताती हूँ। एक मिट्टी का खाना पकाने वाला बर्तन लो और उसमें पानी भरो। इसमें चावल का दाना डालो। एक और खाना पकाने वाले बर्तन में पानी भरो और उसमें किसी भी सब्जी का को काटकर उसके टुकड़े डालें। फिर खाना पकाने वाले बर्तनों के नीचे जलाऊ लकड़ी रख दो और रसोई से बाहर आकर बैठ जाओं। थोड़ी देर बाद तुम्हें बर्तनों में चावल और कढ़ी सब्जी का अक्षय भंडार दिखाई देगी। अपनी बेटी को यह सलाह देकर चील उड़ गई। बेटी ने बिल्कुल वैसा ही किया जैसा उसकी माँ ने उसे सिखाया। भोजन के समय, बाकी सभी पत्नियों ने अपनी- अपनी थालियों के नीचे गड्ढा खोद लिया। जैसे ही चील की बेटी उनकी थालियों में चावल परोसती, वे उसे गड्ढे में फेंक देती और फिरसे माँगने लगती। इस तरह, चील की बेटी दूसरी पत्नियों को बार बार परोसती जाती और वे हर बार भोजन नष्ट कर फिर माँगती। अंत में दूसरी पत्नियाँ हार कर शर्म से वहाँ से उठकर चली गयी, चील की बेटी का बनाया हुआ खाना खतम ही नहीं हुआ।

एक दिन चील की बेटी को व्यापारी की दूसरी पत्नियों ने गौशाला साफ़ करने को कहा। वह गौशाला में गई और पहले की तरह अपनी माँ को पुकारने लगी। जैसे ही उसने माँ को तरह पुकारा, चील उसके सामने आ गई। जब उसने उसे पुकारने का कारण पूछा, तो बेटी ने कहा, "माँ, मेरे पति की दूसरी पत्नियाँ मुझे गौशाला साफ करने के लिए कह रही है। मुझे गौशाला साफ करना नहीं आता, आपको यही पूछने के लिए बुलाया है कि इसे कैसे साफ किया जाए।" माँ ने कहा, "बस एक बार झाड़ू को गौशाला के एक तरफ से दूसरी तरफ घुमा दो। तब जगह साफ हो जायेगी।" यह कहकर, उसकी माँ उड़ गई, बेटी ने वैसा ही किया जैसे माँ ने उसे सिखाया। और गौशाला साफ- सफाई से पहले से भी ज्यादा चमक उठी। चील की बेटी का ऐसा अच्छा काम देखकर, व्यापारी और भी अधिक उससे प्यार करने लगा।

जैसे ही बोहाग बिहू (असम में मनाया जाने वाला वसंत उत्सव और नए साल का दिन चैत और वैसाख के संक्रांति में मनाया जाता है) करीब आया, व्यापारी ने अपनी आठों पत्नियों को कपास देकर कहा, "तुम सभी मेरे लिए इस नए साल में पहनने के लिए कपड़े और गमछा बुन कर लाओं। और मैं देखूंगा कि कौन सबसे अच्छा बुनता है। सातों पत्नियों में से प्रत्येक ने कपास को कताई के लिए तैयार करना शुरू कर दिया। लेकिन चील की बेटी उदास बैठी रही क्योंकि वह कताई और बुनाई के बारे में कुछ नहीं जानती थी। अन्य पत्नियों ने सोचा कि चील की बेटी मुश्किल में है। वह कुछ नहीं जानती। वह अपने पति के लिए कपड़े कैसे बुन सकती है? चील की बेटी पिछवाड़े में गई और पहले की तरह अपनी माँ को रोते हुए पुकारा। इस पर चील अपनी बेटी के सामने प्रकट हुई और उससे पूछा, -क्या बात है? जब बेटी ने कपड़े बुनने की बात बताई तो चील ने उससे कहा, "अच्छा मेरी प्यारी, चिंता मत करो। तुम अपने पति को कपड़े दे सकोगी। चारों बाँसों में एक- एक रुई की डिब्बी रख दो- कपड़े अपने आप बन जायेंगे, तुम बिहू के दिन अपने पति को ये बाँस सौंप देना। यह कहकर चील उड़ गई। बेटी ने वही किया जो उसकी माँ ने सलाह दी थी। व्यापारी की अन्य पत्नियाँ अपने काम पर लग गईं। चील की बेटियों द्वारा कपास को अलग रखा हुआ देखकर, वे मन ही मन खुश हुईं और सोचने लगीं, "इस बार हमारी सौतन फंस गई है। अगर चील की बेटी कपड़े बुनने में असमर्थ रही, तो व्यापारी उसे माफ नहीं करेगा।" नए साल की मौके पर, सातों पत्नियों ने अपने- अपने बुने हुए कपड़े अपने पति को पहनाए। लेकिन चील की बेटी ने अपने पति को सिर्फ़ बाँस की चार नलियाँ ही दीं। यह देखकर व्यापारी की बाकी पत्नियाँ ज़ोर ज़ोर से हँस पड़ी। व्यापारी ने चील की बेटी से गुस्से से पूछा, "ये तुम मुझे क्या दे रही हो? कपड़े कहाँ हैं?" उसने कहा, "ज़रा इन बांस की नलियाँ खोलकर तो देखो।" जब व्यापारी ने नलियाँ खोलीं, तो उनमें से सुंदर- सुंदर कपड़े निकलकर आये। और वे इतने अच्छे थे कि दूसरी पत्नियों के कपड़े उनकी तुलना में चिथड़े जैसे लग रहे थे। इसलिए व्यापारी ने दूसरे कपड़ों को फाड़कर फेंक दिया और चील की बेटी के दिए कपड़े पहन लिए। धीरे- धीरे व्यापारी की दूसरी पत्नियों को पता चल गया कि चील उसे कठिन परिस्थितियों से उबरने का उपाय बताने आती है, जिससे वह हर काम बखुबी कर लेती हैं। यह जानकर उन्होंने चील को मारने की योजना बनाई। उनमें से एक यह सुनने के लिए बैठी थी कि चील की बेटी अपनी माँ को कैसे पुकारती है और अंततः यह जान ही गई। एक दिन, वह गौशाला में गई और चील की बेटी की तरह पुकारने लगी। उस पर, चील आई और उसके सामने प्रकट हुई। उस क्षण, उसने झाड़ू से चील पर जोर से प्रहार किया और उसे मार डाला। उसने उसे गाय के गोबर के नीचे दबा दिया। चील की बेटी को इस बात की जरा सी भी भनक नहीं लगी। इसके बाद, चील की बेटी ने कई बार अपनी माँ को पुकारा, लेकिन, वह कहाँ से आती? तब चील की बेटी समझ गई कि व्यापारी की अन्य पत्नियों ने षड्यंत्र करके उसकी माँ को मार डाला है। यह जानने के बाद बेटी बहुत रोई।

कुछ दिनों बाद, व्यापारी व्यापार के लिए जाने को तैयार हुआ। जाते समय उसने अपनी सातों पत्नियों को चेतावनी दी कि वे चील की बेटी के पास न आएँ और उसकी अच्छे से ध्यान रखें।

एक दिन उनके गाँव पर एक दूसरे व्यापारी कंघी, आईना, सिंदूर, सुगंधित तेल और सौंदर्य प्रसाधन की विभिन्न वस्तुएँ लेकर आया था, उसने अपने नाव को व्यापारी के घाट पर ही बाँध दिया। व्यापारी की अन्य पत्नियों ने उस व्यापारी के हाथों चील की बेटी को बेचने की योजना बनाई। व्यापारी के पत्नियों ने उस नए व्यापारी से सामान ले लिया और कहा कि बदले में वे उसे एक सुंदर लड़की देंगे। उन्होंने लड़की की सुंदरता और गुणों का ऐसा वर्णन किया कि वह उनकी बात मान गया। दूसरी पत्नियों ने चील की बेटी से कहा, "हमारे घाट पर एक व्यापारी नाव बाँध रहा है, जिसके नाव भर सामान है। चलो, उससे कुछ सामान खरीद लेते हैं।" चील की बेटी बोली, "बहनों, मुझे कुछ नहीं चाहिए। तुम सब जाओ, मैं यहीं रहूँगी। मेरे पति ने मुझे कहीं न जाने को कहा है।" जब वे उसे बार- बार अपने साथ चलने के लिए कहते रहे, तो वह हिचकिचाते हुए अंततः मान ही गई। सामान देखने के बहाने व्यापारी ने उसे नाव में बिठा लिया। व्यापारी और पत्नियों द्वारा बनाई गई योजना के अनुसार, उसने अचानक नाव खोल दी और चील की बेटी को अपने साथ ले गया।

व्यापारी उसे अपने घर ले गया। वहाँ उसने उसे सूखी मछलियों का रखवाला बना दिया। चील की बेटी धूप में सूखी मछलियों की रखवाली करते हुए रो रो कर विलाप करने लगी-

कुम्हार की पत्नी ने मुझे नदी में बहा दिया।
चील माँ ने मुझे पानी से उठा लिया,
व्यापारियों के राजकुमार ने मुझसे विवाह किया।
उसकी सात पत्नियों ने मुझे एक मछली वाले को बेच दिया।
और उसने मुझे सूखी मछलियों का रखवाला बना दिया।

उसका व्यापारी पति उसी रास्ते से नाव से घर की ओर जा रहा था। दूर से रोने की आवाज सुनकर उसने नाव वहीं रोक दी और चील की बेटी के पास गया। उसने उसके रोने का कारण पूछा तो उसने विस्तार से सब कुछ बता दिया। फिर उसने उसे नाव पर बिठाया, नहलाया, नए कपड़े पहनाए और अपने साथ ले आया। व्यापारी ने चील की बेटी को एक लकड़ी के संदूक में छिपा दिया और उसमें सांस लेने के लिए एक छेद कर दिया। घर पहुँचकर उसने अपने अन्य सामान के साथ संदूक को भी अपने कमरे में रख दिया। जब उसने सातों पत्नियों को देखा तो उनसे पूछा, "मैं आप सभी को देख रहा हूँ, लेकिन चील की बेटी मुझे क्यों नहीं दिख रही है?" उन सभी पत्नियों ने उत्तर दिया, "वह अपनी माँ की घर गयी है, गए हुए कई दिन हो गए हैं, लेकिन वह अभी तक वापस नहीं आई है।" यह सुनकर व्यापारी बोला, "मुझे लगता है कि तुम सबने उसके साथ कुछ किया है। तुमलोग सच बोल रहे हो या झूठ यह जानने के लिए मैं तुमलोगो का परीक्षा लूँगा।" ऐसा कहकर, उसने एक गड्ढा खोदा उसमें पत्ती रहित कांटेदार शाखाएँ लगाईं। उसके बाद, उसने गड्ढे के एक छोर से दूसरे छोर तक एक ताज़ा तुरई बाँधी। फिर उसने अपनी पत्नियों से कहा, "जो लोग इस धागे को रेंग कर पार कर लेंगे, उन्हें निर्दोष माना जाएगा। एक- एक करके छह पत्नियाँ गड्ढे में गिर गईं और मर गईं और जब वे इसे पार कर रही थीं तो धागा टूट गया। लेकिन सातवीं सहेली नहीं गिरी। वह सात बार धागे के पार गई लेकिन धागा बरकरार रहा। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि वह चील की बेटी को व्यापारी को बेचने के बारे में कुछ नहीं जानती थी। जब अन्य पत्नियाँ ऐसा कर रही थीं, वह खाना पकाने में व्यस्त थी।

व्यापारी ने उन छह पत्नियों को उसी गड्ढे में दफना दिया और चील की बेटी को संदूक से बाहर निकाल लिया। अंततः, वह चील की बेटी और अपनी शेष सातवीं पत्नी के साथ सुख- शांति से रहने लगा।

कामेंग ई-पत्रिका / KAMENG E-JOURNAL
ISSN: 3048-9040 (Online)
संस्करण I | अंक II | अक्टूबर 2025 – अप्रैल 2026 | अर्धवार्षिक पत्रिका
Edition I | Issue II | October 2025 – April 2026 | Half Yearly Journal

भय में छिपा रहा प्रेम

डॉ. सतीश "बब्बा"
मोबाइल - 9451048508, 9369255051.
ई मेल - babbasateesh@gmail.com

This is an open access article under the Copyright (c) 2025 कामेंग ई-पत्रिका

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-Share Alike 4.0 International License.

सहकर्मी समीक्षा जर्नल
Peer reviewed Journal

Page No.: 57-60

रावेंद्र अपनी मरहूम पत्नी की फोटो के सामने खड़ा आंसू बहा रहा था। यह काम तो अब रोज - रोज का था उसका! जीवन के कुछ पल बहुत नाजुक होते हैं। जो नासमझी में बिना सही उपयोग किए ही चले जाते हैं।

रावेंद्र की पत्नी भारती भी एक कुशल गृहिणी थी। कई परंपराएं निभाती रही वह, मायके तरफ की भी, ससुराल तरफ की भी! उस समय के मुताबिक वह ठीक-ठाक पढ़ी लिखी थी। भारती मिडिल पास थी। घूंघट में रहना, सास - ससुर की सेवा करना; पति को खुश रखना भारती अपना कर्तव्य मानती थी।

भारती को ब्याह कर रावेंद्र अस्सी के दशक में लाया था। छुई-मुई सी भारती पति से भय खाती थी। वह बहुत संभलकर रहती थी, बोलती थी। सबकुछ रावेंद्र से या सास से पूछकर ही करती थी।

इधर रावेंद्र गांव में शहर से व्याहकर बढ़िया बहुरिया लाया था, यह गांव में चर्चा का विषय था। रावेंद्र भी भारती से डरता था। रावेंद्र के जब तक माता - पिता जीवित रहे थे, तब - तक रावेंद्र - भारती मर्यादित आचरण से एक दूसरे से मिलते रहे थे।

दो बच्चों के जन्म के बाद माता पिता ने रावेंद्र - भारती को उनके हाल पर छोड़ दिया था, आखिर एक दिन सबके माता-पिता जाते हैं सो रावेंद्र के माता-पिता, भारती के सास - ससुर भी इस दुनिया से रवाना हो गए थे। दोनों ने संतुलित जीवन जीते हुए एक दूसरे का साथ निभाते हुए बच्चों को पढ़ाने - लिखाने में कोई कोर कसर नहीं उठा रखे थे।

दोनों एक-दूसरे से डरते थे, फिर भी एक दूसरे से दूर नहीं रहते थे। डरते हुए संकोच करते थे, एक दूसरे को, एक दूसरे की कमी नहीं कह पाते थे। जो भी अनाज खेतों में पैदा करते थे, उसका सदुपयोग करना कोई उन दोनों से सीखें! एक मिशाल थे गांव में शांत परिवार के रूप में!

भारती मन ही मन बहुत प्यार करती थी अपने पति रावेंद्र को! रावेंद्र भी भारती को बहुत प्यार करता था, कह नहीं पाता था। दोनों एक-दूसरे से संकोच करते हुए ही कोई बात कहा करते थे।

समय गतिमान है। जीवन को कब क्या हो जाए, कब गृहण लग जाए कोई नहीं जानता है। अचानक एक दिन रावेंद्र की तबियत बिगड़ी, पेट में दर्द उठा था। भारती के लिए कठिन परीक्षा की घड़ी थी। बच्चे छोटे - छोटे, भादों की अंधेरी रात, काली घटा घेर लिया था; रह - रहकर बिजली की कड़क हृदय को दहला रही थी।

गांव में एक झोला छाप डॉक्टर रहता था। वही एक सहारा था। शहर जाने के लिए कोई साधन नहीं था। तब सड़क नहीं थी। गांव में किसी - किसी के पास साइकिल हुआ करती थी। बैलगाड़ी से कैसे जाया जा सकता था।

भारती रावेंद्र से डरती थी कि, यह जाने नहीं देंगे। एकांत में घर रावेंद्र ने बनाया था। रावेंद्र कभी भी आदेशात्मक शब्दों का इस्तेमाल भारती के लिए नहीं करता था।

भारती ने रावेंद्र से कहा, "मैं अभी आई!" तब फोन का अता-पता नहीं था।

भादों की आधी रात, काले बादल घिरे हुए, न जमीन नजर आ रही थी, न पगडंडी! एक अंदाजन पैर पड़ रहे थे, भारती के; फिर भी चाल में कमी नहीं आई थी। डर नहीं एक दृढ़ निश्चय था, पति के लिए डाक्टर को लाना है।

कभी - कभी बिजली की चमक के साथ बादलों की गरज दिल दहला देने वाली आवाज करते थे। फिर भी भारती को कोई फर्क नहीं पड़ता था, वह उसी धुन में चली जा रही थी।

रीं रीं रीं झींगुरों की धुन, वातावरण को भयानक बना रहे थे। एक नाले को पार करके करीब आधा किलोमीटर गांव के बीचोंबीच डाक्टर झक्खड़ी का निवास, दवाखाना सबकुछ वहीं था। नाले में जुगुनू की चमक बड़ी डरावनी थी। कितना भी हिम्मत वाला होता अकेले जाने की हिम्मत नहीं जुटा पाता। धन्य है भारती जो चली जा रही थी अपने लक्ष्य की ओर!

आदमी की आहट पाकर उल्लू तरह - तरह की डरावनी आवाजें निकाल रहे थे। भारती को कोई फर्क नहीं पड़ता था। नीचे पैरों में सांप भी लिपट सकता था, भारती को अपने मर जाने का जरा सा भी डर नहीं था।

गांव में लोग चिमनी के अलावा कुछ नहीं जलाते थे, बड़े घरों में लालटेन जलती थी। भादों की आधी रात में पूरा गांव गहरी नींद में मस्त सोया हुआ था। गांव की खोर में बहुत ही गहरा, घना अंधेरा था; हाथ मारे नहीं सूझता था। कुत्तों का भी भय था, गनीमत थी कि, एक भी आवारा कुत्ता भारती को नहीं मिला था।

किसी तरह से टटोलते - टटोलते वह डाक्टर झक्खड़ी के घर के बाहर पहुंच गई थी। वह सोचने लगी थी कि, 'लानत है किसानों की जिंदगी को! एक टार्च तो दूर की बात है, लालटेन नहीं है कि, उसी के सहारे आ जाती। चिमनी लेकर आती तो तेज हवा चल रही थी वह बुझ जाती!'

हाथ से टटोलकर, डाक्टर झक्खड़ी के दरवाजे की कुंडी भारती की पकड़ में आ गई थी। भारती कुंडी लगातार खटखटाने लगी थी। आखिर डाक्टर की घरवाली को कुंडी की खटखटाहट सुनाई पड़ गई थी। वैसे सतर्कता में स्त्रियां पुरुषों से ज्यादा सतर्क रहती हैं।

डाक्टराइन दरवाजे के पास आई, दरवाजा खोलने से पहले उसने पूछा, "कौन है?"

भारती ने कहा, "बहन मैं भारती हूं, नदी पार से आई हूं, डाक्टर साहब से काम है!"

भारती का ब्यौहार गांव में बहुत अच्छा था। एक बार डाक्टर को खटाई के लिए आम नहीं मिल पा रहे थे, डाक्टर को लड़की की शादी करनी थी। तब भारती ने अपने बगीचे से यह कहकर कि, 'जितने आम की जरूरत हो लेकर जाओ!' भारती ने डाक्टर के लाख कहने पर भी एक पैसा नहीं लिया था। डाक्टराइन को आज भी याद है। भारती ने कहा था कि, "तुम्हारी बेटी है तो वह हमारी भी बेटी है हम पैसे नहीं लेंगे!"

डाक्टराइन, भारती को आदर के साथ अंदर लेकर गई थी। उसने डॉक्टर झक्खड़ी को जगाया। भारती ने कहा, "उनकी तबियत खराब है पेट फूल रहा है, दर्द भी है!"

डाक्टर झक्खड़ी दवा देना चाहा था, तब डाक्टराइन ने झपटकर कहा, "डरते हो, वह मेहरिया जाति होकर बिना टार्च, लालटेन के आ गई हैं, तुम टार्च लेकर जाओ, बल्कि रात में नहीं आना, वहीं सो जाना!"

डाक्टर झक्खड़ी झोला उठाया, टार्च लेकर भारती के साथ उसके घर की ओर चल पड़ा था। रास्ते में आगे - आगे अपर्णा सरपट में चल रही थी, पीछे - पीछे डाक्टर झक्खड़ी चल रहा था।

घर में आती डाक्टर के साथ भारती को देखकर रावेंद्र सबकुछ समझ गया था, वरना वह सोच रहा था कि, 'यह भारती चली कहां गई!'

रावेंद्र कुछ भी नहीं बोला। डाक्टर झक्खड़ी ने देखा - परखा, सल्फाडाइजीन की गोली खिला दिया था। थोड़ी देर में रावेंद्र को आराम हो गया था।

डाक्टर झक्खड़ी के सोने की व्यवस्था भारती ने रावेंद्र के पास ही कर दिया था। खुद भारती यह कहकर कि, "किसी चीज की जरूरत पड़े तो मुझे बुला लेना मैं आ जाऊंगी!"

सुबह डाक्टर झक्खड़ी अपने घर चला गया था। रावेंद्र - भारती पूर्व की तरह घर के संचालन में लग गए थे। समय दौड़ रहा था। रावेंद्र - भारती एक दूसरे के पूरक थे, कभी एक - दूसरे को परेशान नहीं करने का बीड़ा उठा रखा था।

ऐसा दाम्पत्य जो एक - दूसरे को बहुत प्यार करता हो, कुछ हक जताने की, हक जमाने की तनिक भी कोशिश नहीं करता हो ऐसे दंपति बहुत कम देखने को मिलते हैं; फिर दोनों के स्वभाव एक जैसे होते हों यह तो बहुत कम मिलते हैं। स्वभाव एक जैसे होते हैं, नरम, गरम का अंतर होता है।

सब दिन होय न एक समाना, सब नर होय न एक समाना! ऐसा कहा जाता है। जबकि, रावेंद्र, भारती एक समान, एक स्वभाव क्या प्रकृति की कहूं या उस अदृश्य शक्ति की रचना कहूं जिसे आज तक किसी ने देखा ही नहीं है; सिर्फ उसके लिए लड़ते हुए अनेक नामों से पुकारा करते हैं!

वह अद्भुत, अदृश्य शक्ति को ईश्वर, खुदा, गाड, वाहेगुरु, जिनेंद्र आदि आदि नामों से पुकारा करते हैं। अपने कर्मों का ध्यान नहीं करते हैं, करते हैं तो उसे दोष देते हैं कि, उसने यह कर दिया है।

उस ऊपर वाले को निर्दयी भी कहते हैं क्योंकि, अच्छे कर्म करने वालों को तकलीफ ज्यादा होते देखने में आया है। रावेंद्र - भारती अपनी दुनिया में मस्त, अभाव में भी अच्छा महसूस कर रहे थे। क्योंकि जोड़ी सलामत होने से एक दूसरे के पूरक थे वो!

ऐसा दाम्पत्य जीवन जिनका भय में छिपा रहा प्रेम! एक दूसरे को प्यार करते थे फिर भी मुंह से कभी इजहार नहीं करते थे। एक दूसरे से भय करते थे कि, कोई गलती नहीं हो जिससे डांट खानी पड़े!

गलती तो इंसान ही करते हैं। गलती रावेंद्र से हो जाती थी, भारती ने जाना, जानकर भी रावेंद्र को कुछ भी नहीं कहा यह भारती का प्यार था जो उस गलती को भारती डरते - डरते सुधारने में लग जाती थी; सुधार भी दिया करती थी।

गलती भारती भी करती थी। रावेंद्र उसे डरते - डरते सुधारने में मदद करता था, कुछ कहता नहीं था। शायद इसी को दिली प्रेम कहते हैं।

उनकी ख़ुशी में जाने किसकी नजर लग गई; भारती अचानक एक दिन बीमार पड़ गई थी। रावेंद्र जिला अस्पतालों से लेकर पी जी आई, एम्स आदि अस्पतालों में ले जा - जाकर भारती को भर्ती कराता रहा। दवा के साथ दुआ, पंडितों से जाप, पूजा करवाने में, खुदा के दरगाहों में हाजिरी लगाता रहा; उसे कोई सहाय नहीं हुआ।

आज भारती ने कहा, "रावेंद्र तुम मुझे प्यार करते हो यह तो समझती थी, इतना प्रेम करते हो नहीं जानती थी। मैं तो बहुत भय करती रही कि मुझसे कोई गलती नहीं हो जाए जिससे तुम्हारे दिल को ठेस पहुंचे! तुम मेरी गलतियों को भी प्यार किया करते थे; यह तो मैं अब जान सकी हूं!"

रावेंद्र के आंसू बहने लगे थे। रावेंद्र भरे हुए गले से कहा, "भारती, मैं भी भय करता था। गलतियों से बहुत घबरा जाता था कि, तुम नाराज हो जाओगी। तुम जानकर भी मेरी गलतियों को छुपा लिया करती थी, गलतियों को सुधार लिया करती थी, मुझे कुछ भी नहीं कहती थी शायद इसी को कहते हैं प्रेम, प्यार! मेरा तुम्हारा भय में छिपा रहा प्रेम जो सबसे अच्छा अपने-आप में अद्वितीय है!"

भारती कहती थी, "रावेंद्र भगवान समय से पहले मुझे तुमसे अलग कर रहा है, तुम्हें तकलीफ होगी यह जानकर, इसीलिए दिल रोता है, बहुत दुखी हो जाती हूं! जब इस सुख की कल्पना करती हूं कि, तुम्हारी बाहों में मेरा दम छूटेगा तो मन प्रफुल्लित हो जाता है। मेरी सभी सांसों के साथी तुम होगे यह अनुभूति मुझे सुख देती है, तुम्हारा सानिध्य मेरी पीड़ा कम कर देता है!"

रावेंद्र भारती के बहते हुए आंसुओं को ऐसे पोंछता है कि, उसके लगे नहीं। दोनों के भय में इतना प्रगाढ़ प्रेम छुपा था जिसे लिख पाना किसी के लिए संभव नहीं है। मन के सभी कोनों में वह एक दूसरे के साथ रहते थे। एक दूसरे को नहीं देखा तो, बेचैनी बढ़ जाती थी, यही तो प्रेम था जिसे अब जानकारी में लाया गया था।

भारती एकटक देखती रावेंद्र की गोद में बैठी उसकी मजबूत बाहों में सुरक्षित रावेंद्र से कुछ कहना चाहती थी। भारती कह नहीं पाई सिर्फ रावेंद्र के मुख को देखती रही थी; देखते - देखते उसके प्राण पखेरू उड़ गए थे। रावेंद्र भी नहीं जान पाया था कि, मेरी भारती कब इस दुनिया को अलविदा कह दिया।

आज उसकी फोटो से बातें करते हुए आंसुओं में भीगता रावेंद्र धुलकर पवित्र हो गया है; ऐसा महसूस कर रहा है। सारी उम्र भय में छिपा रहा प्रेम, अब आंसुओं के रूप में भादों मास की झड़ी की तरह नदी बनकर बह रहे थे। इसी बहाव में एक दिन रावेंद्र भी बह जाएगा, यह निश्चित है।

यही जिंदगी है जो रावेंद्र की जिंदगी की तरह एक दिन अकेले बह जाएगी। भारती के विछोह में चीत्कार उठी है रावेंद्र की आत्मा; जो आंसू बनकर पिघल - पिघलकर बह जाएगी बर्फ की तरह विछोह की गर्मी पाकर!

कामेंग ई-पत्रिका / KAMENG E-JOURNAL
ISSN: 3048-9040 (Online)
संस्करण I | अंक II | अक्टूबर 2025 – अप्रैल 2026 | अर्धवार्षिक पत्रिका
Edition I | Issue II | October 2025 – April 2026 | Half Yearly Journal

नफरत: साहित्य के सन्दर्भ से

डॉ. पल्लवी[1]
[1] **सहायक प्राध्यापक**
विदेशी भाषा विभाग
तेजपुर विश्वविद्यालय, असम
007manjari@gmail.com, manjari23@tezu.ernet.in

This is an open access article under the Copyright (c) 2025 कामेंग ई-पत्रिका
This work is licensed under a Creative Commons Attribution-Share Alike 4.0 International License.

सहकर्मी समीक्षा जर्नल
Peer reviewed Journal
Page No.: 61- 69

"This little part of my life is called happiness."

("मेरे जीवन का यह छोटा सा हिस्सा ख़ुशी है")[1]

अंग्रेजी भाषा की फिल्म *दी परस्युट ऑफ़ हिप्पीनेस* (2006) (*The Pursuit of Happiness*, 2006) के आखिरी दृश्य में फिल्म के मुख्य किरदार क्रिस की डबडबाई आँखें हम दर्शकों से कुछ सेकंड्स के लिए रूबरू होती है. यह नौकरी मिलने की ख़ुशी नहीं है, बल्कि अपने ५ साल के बेटे को खाना और छत देने की ख़ुशी है. उसके बाद के दृश्य में किरदार क्रिस कहता है: "मेरे जीवन का यह छोटा सा हिस्सा ख़ुशी है". क्रिस अपनी डबडबाई आँखों से ख़ुशी के पल को जीता है और उसी पल में भीड़ में चलता हुआ ख़ुद के लिए ताली भी बजाता है. चेहरे के हाव-भाव, डबडबाई आँखें और हाथों से ताली बजाना- ये सब उस पल में उसकी ख़ुशी के भाव को सिमेना के पर्दे पर बयां करती है. सिनेमा हॉल के अँधेरे में दर्शक, जो अपना अस्तित्व, रोजमर्रा की जद्दोजहद और अपनी दिनचर्या के उबाऊपन को सिनेमा हॉल के बाहर छोड़ आया है, क्रिस के साथ ख़ुशी के साकारात्मक भाव को महसूस करते हैं. कई क्रिस के साथ रोते भी हैं. डबडबाई आँखें या रोना सिर्फ दुःख के भाव को ही नहीं, बल्कि ख़ुशी के भाव को भी बयां करती है और इस दृश्य में क्रिस के भाव को उसके सन्दर्भ में समझने की जरुरत है.

भाव एवम् भाषा

मानव अपने 'भाव' शब्दों के माध्यम से, तो कभी हाव-भाव के द्वारा तो कभी चिन्हों के मार्फ़त तो कभी मौन रहकर बतलाता है. जब भी भाव को बतलाने, संप्रेषित करने, दिखलाने, कहने, डिस्प्ले करने, व्यक्त या जाहिर करने की बात आती है तो भाव शाब्दिक आयाम से परे जाता है और भाषा की नयी परिभाषा भी गढ़ देता है, जहाँ 'अशाब्दिक' और 'सांकेतिक' भी भाषा बन जाते हैं. ऊपर दिए गए पहले उदाहरण में क्रिस का पात्र शब्दों से ही नहीं, अपने शारीरिक हाव-

[1] मूल अंग्रेजी से हिंदी में मेरा अनुवाद. 2006 *The Pursuit of Happiness*, Director: Gabriele Muccino.

भाव के माध्यम से ख़ुशी व्यक्त करता है. ऐसा इसलिए भी संभव है, क्यूंकि इसका माध्यम दृश्य-विधान है. इससे इतर साहित्य में सिर्फ शब्दों के माध्यम से 'शाब्दिक' और अशाब्दिक भावों को लिखा जाता है, चाहे वह विधा उपन्यास, नाटक, कविता, संस्मरण या आत्मकथा हो. साहित्य के दृष्टिकोण से भावों को देखें तो कई सवाल उठते हैं: क्या साहित्य में भावों को इंगित करने वाली शब्दावली के अलावा भी किसी और अन्य भाषाई माध्यम से भावों को लिखा जा सकता है? अगर हाँ, तो उसकी भाषा क्या होगी? उसके लिए कौन सी/कैसी साहित्यिक रणनीति अपनाई जाती है ? जैसा कि पहले के उदाहरण में ख़ुशी के भाव को दर्शाया गया है, तो सवाल उठता है कि क्या ख़ुशी के भाव को व्यक्त करने वाले इस दृश्य को सिर्फ शब्दों में लिखा जा सकता है ? अगर लिखा जा सकता है तो उसकी भाषा कैसी होगी ? शब्द कैसे होंगे ? इत्यादि.

जर्मन भाषा विज्ञान और साहित्य से विश्लेशक रुऊडीगर श्नैल (Rüdiger Schnell) अपनी किताब *Haben Gefühle eine Geschichte? Aporien einer History of Emotions* (2015) में साहित्य और भाव के बाबत साहित्यिक रणनीति की बात करते हैं और दो मौलिक सवाल करते हैं: क्या एवं कैसे; यानि कि टेक्स्ट अथवा व्याखान में भाव पर क्या बात हुई है और कैसे बात हुई है ? 'क्या' वाला सवाल टेक्स्ट के अंतर्वस्तु और विषय को खंगालता है और 'कैसे' वाला सवाल साहित्यिक रणनीति को 'डीकंस्ट्रक्ट' करता है. टेक्स्ट में लिखे/वर्णित/संप्रेषित किये गए भाव को लेखिका – टेक्स्ट – पाठक और सन्दर्भ के चतुष्कोण से 'डीकंस्ट्रक्ट' किया जा सकता है. इस लेख में टेक्स्ट और सन्दर्भ के माध्यम से भाव को 'डीकंस्ट्रक्ट' करने की कोशिश की गयी है. भाव को 'सामाजिक भाव' (social emotion) एवं 'अंतर्वैक्तिक भाव' (inter-personal emotion) की श्रेणी में रख कर इस लेख में 'नफरत' जैसे नकारात्मक भाव को केंद्र में रखकर, विभिन्न सन्दर्भों में इसकी विवेचना की गयी है। भाषा के द्वारा संप्रेषित भाव के आयामों पर साहित्य के दो उदाहरण लेकर इस लेख में चर्चा की गयी है। पहला उदाहरण ऑड्रे लोर्ड (1934-1992)के लेख 'Eye to Eye: Black Women, Hatred, and Anger' (1984) से लिया गया है और दूसरा उदाहरण प्रिमो लेवी (1919-1987) के संस्मरण *Se questo è un uomo,* 1947 (*If This is a man*) से लिय गया है। दो अलग काल और संदर्भ में लिखे गए दोनों साहित्य को एक करता है: नफ़रत का 'भाव'। एक तरफ़ नस्लिए भेदभाव (racial discrimination) और दूसरी तरफ़ यहूदियों के प्रति भेदभाव (antisemitism).

इस लेख के पहले भाग में नफरत की परिभाषाओं और इसके बहुआयाम को थ्योरी/सिद्धान्त के माध्यम से समझने की कोशिश की गई है और दुसरे भाग में साहित्य से दो उदाहरणों के माध्यम से व्याख्या की गई है।

'नफरत' की सेधांतिक परिभाषा: सामाजिक एवं अंतर्वैक्तिक भाव

'भाव', जिसके लिए अंग्रेजी में 'Emotion' शब्द का इस्तेमाल किया जाता है, कई प्रकार के होते हैं. तीसरी शताब्दी (A.D) में मूलतः संस्कृत में लिखे *नाट्यशास्त्र* के छठे भाग 'रसाध्याय' में भावों की चर्चा की गयी है. यहाँ वर्णित आठ स्थायी भावों (रति, हास्य, शोक, क्रोध, भय, उत्साह, विस्मय और जुगुप्सा) में जुगुप्सा भी एक महत्वपूर्ण भाव है. हिंदी में जुगुप्सा के समानार्थी है: घृणा, नफरत, निंदा, बुराई इत्यादि. हिंदी भाषा में जुगुप्सा अथवा घृणा और नफरत के मायने समान हैं.[2] अंग्रेजी में 'घृणा' के लिए 'Disgust' और 'नफरत' के लिए 'Hate', दो अलग अलग शब्दों का इस्तेमाल किया गया है और 'Disgust' और 'Hate' को दो अलग भावों के तौर पर परिभाषित करने की और समझने की कोशिश भी की

[2] https://dict.hinkhoj.com/hindi-dictionary.php?word=disgust&ie=UTF-8 (10.05.2025)

गयी है. जर्मन भाषा में भी 'Disgust' के लिए 'Ekel' और 'Hate' के लिए 'Hass/Haß' शब्दों का प्रयोग होता है. जर्मन भाषा में भी इन दोनों भावों को एकदम दो अलग भावों के तौर पर देखा गया है. भावों की जटिलता इसी में है कि कई मौकों पर एक साथ कई भावों का मिश्रण होता है, तो कई सन्दर्भों में एक केंद्रीय भाव के साथ दुसरे भाव हाशिये पर होते हैं. रॉबर्ट ग्राफिक लिखते हैं कि एरिस्टोटल की प्रशिद्ध रचना *Ēthika Nikomacheia* (*The Nicomachean Ethics*) में ग्यारह प्रकार के भावों की, जिसे एरिस्टोटल "पाथे" ("pathe") लिखते हैं, की चर्चा की गयी है: "[...] emotions (pathe): appetite (epithumia), anger (orge), fear(phobos), confidence(thrasos), envy(phthonos), joy(chara), love(philia), hate(misos), yearning(pothos) desire to emulate(zelos) and pity(eleos)."[3] . अंग्रेजी का शब्द 'Hate' या ग्रीक भाषा का शब्द 'misos' या हिंदी भाषा के शब्द जुगुप्सा, घृणा या नफरत, अथवा जर्मन भाषा के शब्द Ekel और 'Hass/Haß' एक ऐसे भाव की तरफ इशारा करते हैं, जो इन सभी भाषाओँ में एक नकारात्मक भाव माना गया है, और जिसकी सांस्कृतिक, सामाजिक और एतिहासिक समझ एक दुसरे से भिन्न और अलग है. काल, सन्दर्भ, संस्कृति और समाज की विभिन्नताओं और जटिलताओं में ही भावों को परिभाषित किया जा सकता है और इसे समझा जा सकता है.

किसी भी भाव की कोई एक परिभाषा नहीं हो सकती. एक भाव के लिए विभिन्न भाषाओँ में भिन्न शब्द हो सकते हैं और कई सन्दर्भों में एक भाव दुसरे कई भावों के साथ अस्तित्व में आते हैं. कई विषयों के लेंस से भाव को देखा जा सकता है. ऐसी ही एक कोशिश यहाँ भी की गयी है, 'नफरत' के भाव को समझने के लिए. इस लेख में 'नफरत' शब्द का चयन किया गया है और यह चयन इसलिए भी क्यूंकि समकालीन सन्दर्भ में अंग्रेजी भाषा के शब्द 'Hate' के लिए हिंदी में 'नफरत' शब्द का इस्तेमाल प्रचलन में है. टिफ़नी वाट स्मिथ एरिस्टोटल द्वारा व्याखा किये गए ग्रीक भाषा के शब्द 'misos' अथवा 'नफरत' को समझते हुए लिखती हैं कि एरिस्टोटल के अनुसार "'नफरत' एक अमूर्त भाव है और यह भाव हमेशा किसी समूह या समुदाय के खिलाफ महसूस किया जाने वाला भाव है. हो सकता है कि 'नफरत' किसी व्यक्ति विशेष के लिए हो, लेकिन 'नफरत' इसलिए है क्यूंकि वो व्यक्ति विशेष किसी समुदाय का हिस्सा है. एरिस्टोटल के अनुसार 'नफरत' एक 'लाइलाज' बीमारी की तरह है जिसका एकमात्र मकसद है: 'विनाश'. जब हम किसी से नफरत करते हैं तो ऐसा नहीं है कि हम उससे लड़ना चाहते हैं, बल्कि हम ये चाहते हैं कि उस इंसान का अस्तित्व ही मिट जाए."[4] एरिस्टोटल 'नफरत' को नैतिकता से भी जोड़ कर देखते हैं: 'नफरत' उनके लिए महसूस किया जाता है जिन्होंने किसी प्रकार के अन्याय को अंजाम दिया हो. एरिस्टोटल की इस व्याखा में 'नफरत' महसूस करना एक पीड़ादायक प्रक्रिया नहीं है, बल्कि इस भाव के माध्यम से न्याय की तरफ खड़े होना है. इस प्रकार 'नफरत' का भाव हमारे अंदर एक सकारात्मक भाव को जगाता है, जिसे नैतिक श्रेष्ठता कहते हैं.[5]

सारा अहमद (*The Cultural Politics of Emotions*, 2004) 'नफरत' के सन्दर्भ में लिखती है कि "यह हमेशा किसी चीज या किसी इंसान के विरुद्ध महसूस होता है और दृश्य-घटना-विज्ञानं (Phenomenology) के दृष्टिकोण से यह जान-बूझ कर पुरे विवेक से किसी इंसान के विरुद्ध महसूस होता है".[6] बैर्द और रोसेनबाउम (1992) लिखते हैं कि "seething

---

[3] Robert Grafik: 'World Literature and Comparative Poetics: Cultural Equality, Relativism, or Incommensurability?', in: *World Literature Studies* (2013): 64-76. Here page no. 73.

[4] जर्मन से हिंदी में मेरा अनुवाद. Tiffany Watt Smith: *Das Buch der Gefühle,* trans. from English by Birgit Brandau, München: dtv 2015. Page no. 148.

[5] Ibid.

[6] Sara Ahmed: *The cultural politics of Emotion,* Edinburgh: Edinburgh University Press 2004. Page no. 49.

with passion against another human being"[7] 'नफरत' है. 'नफरत' का सब्जेक्ट अपने लिए एक ऑब्जेक्ट की तलाश में रहता है और उसका ऑब्जेक्ट या तो 'काल्पनिक' (imagined) या कोई 'दूसरा' (other) हो सकता है. इस 'काल्पनिक' और 'दुसरे' को नफरत का ऑब्जेक्ट बनाने के लिए पूर्वाग्रह और अवधारणायें महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है. डेविड होल्ब्रूक अपनी किताब *The Masks of Hate. The Problems of False Solutions in the Culture of an Aquisitive Society* (1972) में लिखते हैं कि 'नफरत' की स्थिति में सब्जेक्ट को ऑब्जेक्ट के साथ एक विध्वंशकारी रिश्ते की कामना होती है और इस प्रकार सब्जेक्ट ऑब्जेक्ट के साथ जुड़ता है और यह जुड़ाव 'नफरत' का जुड़ाव होता है.[8] इन सभी व्याख्यायों में 'नफरत' सामाजिक एवं अंतर्वैक्तिक भाव है जो हमें मूलतः चेक भाषा में लिखी गयी मिलन कुंदेरा की किताब "The Joke" (1967) के एक छोटे से भाग में भी देखने को मिलता है. इस उपन्यास में लुडविक जान नाम का पात्र मिलिट्री बैरक की निगरानी में प्राग शहर के एक खदान में काम करता है. एक सुबह वह देखता है कि उसका साथ काम करने वाला अलेक्सेज को साथ के और लोग उसकी घोर निद्रा से उसे उठाने का प्रयास करते हैं. इस कोशिश में मिलिट्री के सिपाही भी शामिल हैं. वही सिपाही, जिससे वहां काम कर रहे कामगारों को हमेशा कोफ़्त होती है. कमजोर और थके शरीर वाले अलेक्सेज को लेकर सिपाहियों में एक तरह की नफरत है और उनकी इस नफरत में साथ काम करने वाले और भी कामगार शामिल हो जाते हैं. अलेक्सेज को नींद से उठाने के लिए बैरक का कमांडर पानी का ड्रम ले आता है. सब लोग अपने इस कृत्य को 'Joke' यानि उपहास समझते हैं, जबकि लुडविक इसे 'नफरत' लिखता है: "मुझे इस बात से गुस्सा आ रहा था कि अलेक्सेज के लिए साझा नफरत ने अचानक से उस सब के बीच की सारी उंच-नीच को एक कर दिया [...] और सबने कमांडर की क्रूरता पर एकजुटता महसूस किया."[9] 'नफरत' कामगारों और उनकी पहरेदारी करने वाले सिपाहियों के बीच का अंतर मिटा देता है और इस पल में साझा 'नफरत' मिलिट्री कमांडर, सिपाही और साथी कामगार के बीच एकजुटता पैदा करता है. इस एकजुटता के केंद्र में है 'नफ़रत' और "क्रूरता". अलेक्सेज उनकी 'नफरत' का साझा ऑब्जेक्ट है. 'नफरत' जैसे नकारात्मक भाव यहाँ सामाजिक एवं अंतर्वैक्तिक हैं, क्यूंकि यह किसी दुसरे के लिए महसूस किया जाता है. इस भाव के केंद्र में हिंसा और क्रूरता है, इसलिए यह नकारात्मक है, और चूँकि यह हिंसा किसी दुसरे के लिए महसूस किया गया है इसलिए अंतर्वैक्तिक है.

आगे इस लेख में एरिस्टोटल, अहमद, रोसेनबाउम और होल्ब्रूक की 'नफरत' की व्याख्याओं को दो उदाहरणों ऑड्रे लोर्ड की आत्मकथा के एक छोटे से अंश और प्रिमो लेवी के संस्मरण के एक अंश के माध्यम से समझने की कोशिश की गयी है।

"उसकी आँखें. फुले हुए नथुने. नफरत": ऑड्रे लोर्ड

जानी मानी लेखिका, ब्लैक फेमिनिस्ट और सिविल राईट एक्टिविस्ट ऑड्रे लोर्ड (1934-1992) नस्लीय भेदभाव के सन्दर्भ में अपनी आपबीती बयां करते हुए लिखती है: "मुझे नफरत के बारे में बात करना पसंद नहीं है. मृत्यु की आकांक्षा सा भारी तिरस्कार और नफरत को याद करना मुझे पसंद नहीं, जो मैंने जबसे देखना सीखा, तब से स्वेत लोगों की आँखों में देखा."[10] बचपन का एक किस्सा बयां करती हैं, जहाँ उन्होंने एक श्वेत महिला की आँखों में अपने लिए सिर्फ इसलिए

---

[7] R. M Baird and S.E. Rosenbaum,: 'Introduction', in: R.M. Baird and S.E. Rosenbaum (eds.): *Bigotry, Prejudice and Hatred: Definitions, Causes and Solutions*. Buffalo, New York. Prometheus Books, 1992. Page no. 9.

[8] See, D. Holbrook: *The masks of Hate. The Problem of False Solutions in the Culture of an Acquisitive Society*. Oxford. Pergamon Press, 1972. Page no. 36.

[9] अंग्रेजी से हिंदी में मेरा अनुवाद. Milan Kundera: *The Joke*. English Translation. USA. Harper Collins: 1992. Page no. 113.

[10] मूल अंग्रेजी से हिंदी में मेरा अनुवाद. Audre Lorde: 'Eye to Eye: Black Women, Hatred, and Anger'. In: Lodre, Audre: *Sister Outside. Essays and Speeches*. Random House. New York: 1984. P. 157.

'नफरत' देखा क्यूंकि ऑड्रे की चमड़ी का रंग काला था. साहित्यिक रणनीति के दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह लोर्ड की आपबीती है और इस आपबीती की कथावाचक लोर्ड खुद हैं. इस विधा में लिखे गए अनुभव लेखक के खुद के अनुभव होते हैं. लोर्ड अपनी आपबीती यूँ लिखती हैं:

"हार्लेम जाने वाली एक सबवे ट्रेन. मैंने अपनी माँ की बांह को कसकर पकड़ रखा था, उसके दोनों हाथ क्रिसमस की खरीददारी के थैले से भरे हुए थे. [...] मेरी एक तरफ एक आदमी अखबार पढ़ रहा था. दूसरी तरफ फर वाली टोपी पहने मुझे घूरती एक औरत. घूरते वक़्त उसका मुंह ऐंठता है और फिर उसकी नज़र नीचे की तरफ गिरती है, मेरी नज़रों को साथ में लेते हुए. चमड़े का दस्ताना पहना उसका हाथ उस लाइन पर से कुछ खींचता है, जिस लाइन पर मेरा नीले रंग का स्नोपेंट (ठण्ड के मौसम में पहना जाने वाला पेंट) और उसका चमकदार फर वाला कोट एक दुसरे से मिलते हैं. वह झटके से कोट को अपने और करीब खींचती है. मैं देखती हूँ. मुझे कोई ऐसी डरावनी चीज उसके और मेरे बीच के सीट पर नहीं दिखती है, जो उसे दिख रही है- संभवतः एक तिलचिट्टा. लेकिन उसने मुझतक अपना हॉरर पहुंचा दिया था. जिस तरीके से वह देख रही थी, कुछ जरुर ही बहुत बुरा होगा. इसलिए मैंने भी अपना स्नोसूट उस चीज से दूर अपने और करीब खिंच लिया. जब मैं उपर देखती हूँ तो वह महिला अब भी मुझे घूर रही है, उसके नथुने और बड़ी आँखें. और अचानक से मैंने महसूस किया कि हमारी सीट के बीच में कुछ भी नहीं रेंग रहा है, यह मैं हूँ, जिससे वह नहीं चाहती कि उसका कोट स्पर्श हो. जैसे ही वह झटके लेते हुए उठती है और ट्रेन की तेज़ रफ़्तार में एक पट्टी को पकड़ती है, उसका फर मेरे चेहरे को छूता हुआ निकलता है. जिस बच्चे का जन्म और पालन यहीं न्यूयॉर्क शहर में हुआ, यानि मैं अपनी माँ के बैठने के लिए जगह बनाने के लिए तेज़ी से खिसकती हूं. एक भी शब्द नहीं बोला गया. मुझे अपनी माँ को कुछ भी कहने में डर लग रहा है कि पता नहीं मैंने क्या कर दिया है. मैं गुप्त रूप से अपनी स्नोपेंट की साइड को देखती हूँ. क्या उसपर कुछ लगा हुआ है ? यहाँ जो भी हो रहा है मुझे समझ में नहीं आ रहा, लेकिन इसे मैं कभी भूल नहीं पाऊँगी. उसकी आँखें. फुले हुए नथुने. नफरत."[11]

भाषाई स्तर पर भाव की ही शब्दावली से 'Hate' यानी 'नफरत' शब्द का चयन करते हुए लोर्ड यहाँ "उसकी आँखें" और "फुले हुए नथुने" शब्दों का भी प्रयोग करती है. यहाँ 'नफरत' शारीरिक हाव-भाव के द्वारा संप्रेषित होता है. इस अशब्दिक सम्प्रेषण में 'नफरत' शारीरिक हाव-भाव में लक्षित होते हैं और शरीर के अंग ही शब्द बन जाते हैं. इस विशेष सन्दर्भ में 'नफरत' उस महिला की आँखें और फुले हुए नथुने है. 'नफरत' जुबान से शब्द बन कर नहीं निकलते हैं, जैसा कि लोर्ड खुद लिखती हैं: "एक भी शब्द नहीं बोला गया". आगे लोर्ड लिखती हैं "पता नहीं मैंने क्या कर दिया है". यहाँ लोर्ड को शारीरिक हाव-भाव में परिलक्षित 'नफरत' के द्वारा उनके अपने अस्तित्व का अपराधबोध कराया जाता है. 'नफरत' उनको ये महसूस कराता है कि उनसे ही कोई गलती हुई है. 'नफरत' के ऑब्जेक्ट का अपराधबोध ही 'नफरत' की सबसे बड़ी ताकत है. उस श्वेत महिला की 'नफरत' एक व्यक्ति लोर्ड के लिए नहीं है, बल्कि उस समुदाय और समूह के लिए है जिससे वह श्वेत महिला लोर्ड को उनकी चमड़ी के रंग से जोड़कर देखती है. इस प्रकार उन महिला के अंदर का नस्लीय भेदभाव यूँ ही राह चलते शहर के किसी ट्रेन में अपने लिए एक अबोध बच्ची में 'नफरत' का एक ऑब्जेक्ट ढूढ़ लेता है. उस महिला की 'नफरत' के केंद्र में 'पीपल ऑफ़ कलर' ('People of Color') के विरुद्ध पूर्वाग्रह और अवधारणायें हैं. इस 'नफरत' का असर ट्रौमा के रूप में लोर्ड के बालमन पर होता है और वह इसी की तरफ इशारा करते हुए लिखती हैं: "इसे मैं कभी भूल नहीं पाऊँगी". 'नफरत' में लिपटे इस नस्लीय भेदभाव के केंद्र में होता है, 'नफरत' के ऑब्जेक्ट को तुच्छ, महत्वहीन, असहाय और अपराधी महसूस कराना. लोर्ड की आत्मकथा के इसी अंश की व्याखा करते हुए सारा अहमद लिखती हैं कि अपने से इतर किसी दुसरे नस्ल के लिए 'नफरत' करना एक प्रक्रिया है, जिसके तहत उस नस्ल के लिए नापसंदगी और

[11] Ibd .

उसके अवांछित होने की शुरुवात होती है.[12] ट्रेन में बैठी श्वेत महिला उस बच्ची लोर्ड से उस पल में एक नकारात्मक रिश्ता कायम करती है, जो उसके 'नफरत' के ऑब्जेक्ट के शारीरिक और सामाजिक बहिष्कार करने की प्रक्रिया पर आधारित है. लोर्ड की आपबीती के उपरांकित अंश में 'नफरत' की नज़र की भी बात की गयी है: "[...] फर वाली टोपी पहने मुझे घूरती एक औरत". यहाँ "घूरना" क्रिया का इतना गहरा असर होता है कि लोर्ड अपनी नज़र खुद पर डालती है: "मैं देखती हूँ. मुझे कोई ऐसी डरावनी चीज उसके और मेरे बीच के सीट पर नहीं दिखती है, जो उसे दिख रही है [...]". यहाँ लोर्ड का शरीर उसके खुद के 'गेज़' (Gaze) का ऑब्जेक्ट बन जाता है. इस प्रकार जिस शरीर को 'नफरत' की नज़र से देखा गया है, वह शरीर दो लोगों की 'गेज़' का ऑब्जेक्ट बन जाता है. आगे लोर्ड "हॉरर" शब्द का इस्तेमाल करती है, यानि 'नफरत' की नज़र डरावनी है उनके लिए. ऐसे अनुभव से एक 'डरे हुए सब्जेक्ट' का जन्म होता है.

हाल ही में अमेरिका में जॉर्ज फ्लायड की हत्या के विरोध में लोग सड़कों पर उतर पड़े थे[13]. फ्लायड की हत्या के केंद्र में नस्लवाद है. यहाँ एक समुदाय और नस्ल के खिलाफ अवधारणायें है जो 'नफरत' को जन्म देती है. नौ मिनट तक फ्लायड की गर्दन पर घुटने टिकाना और उसे मार डालना ही 'नफरत' है. जिसे बैर्द और रोसेनबाउम (1992) "seething with passion against another human being" लिखते है, वही उस पुलिस वाले का नौ मिनट के दौरान भाव है, जब उसके घुटने फ्लायड की गर्दन पर थे. 1980 के दशक में अमेरिका के पत्रकार इसी सन्दर्भ में 'हेट क्राइम' ("Hate-Crime") शब्द की संकल्पना करते हैं, ताकि इस प्रकार के नस्लीय भेदभाव के शिकार हुए हाशिये के लोगों के हक में बात की जा सके[14]. 1990 के दशक में पश्चिमी यूरोप में 'हेट क्राइम' के मुख्य कारणों में दुसरे देशों या प्रदेशों से आये लोगों के खिलाफ असहिष्णुता और अवधारणायें थे. एशियाई, अफ़्रीकी मूल के और पूर्वी यूरोप से आये प्रवासी कामगारों के घरों को जलाने और मारने के कई मामले हैं.[15] 'हेट क्राइम' की संकल्पना ने एरिस्टोटल की 'नफरत' की व्याख्या को एकदम उलट कर दिया है. एरिस्टोटल के अनुसार 'नफरत' उनके लिए महसूस किया जाता है जिन्होंने किसी प्रकार के अन्याय को अंजाम दिया हो, लेकिन 'हेट क्राइम' में नफरत करने वाला नैतिक पतन की तरफ खड़ा होता है. न्याय प्रणाली के सामने हमेशा यह सवाल खड़ा होता है कि क्या किसी 'भाव' को दण्डित किया जा सकता है ? न्यायिक प्रणाली, मनोविज्ञान और दर्शन के त्रिकोण से 'नफरत' जैसे भाव को समझने की जरुरत है.[16] दिनचर्या की 'नफरत', जो यहाँ लोर्ड की लेखनी में है, को कानून में दर्ज 'हेट क्राइम' से अलग करके नहीं देखा जाना चाहिए.

"उसने अपनी नज़र उठाई और मेरी तरफ देखा.": "पानवित्ज़-ब्लिक" और प्रिमो लेवी

दूसरा उदहारण प्रिमो लेवी (1919-1987) के संस्मरण *Se questo è un uomo,* 1947 (*If This is a man*) से लिया गया. एक लेखक और "होलोकॉस्ट" के उत्तरजीवी प्रिमो लेवी इस संस्मरण में पोलैंड के नाज़ी कांसेंट्रेशन कैंप (Concentration Camp) जिसे 'आउसवित्स कांसेंट्रेशन कैंप' ('Ausschwitz Concentration Camp') के नाम से भी जाना जाता है, में बिताए यातना के विषय में लिखते है. इसी संस्मरण में लेवी में एक नाज़ी डॉक्टर के साथ हुए अपने मुठभेड़ के बारे में विस्तार से लिखते हैं, जिसे कैंप में डॉक्टर पानवित्ज़ के नाम से जाना जाता था. लेवी लिखते हैं:

---

[12] See, Sara Ahmed: *The cultural politics of Emotion,* Edinburgh: Edinburgh University Press 2004. Page nos. 54-56

[13] See, https://www.britannica.com/biography/George-Floyd (08/03/2026)

[14] See, Tiffany Watt Smith: *Das Buch der Gefühle,* trans. from English by Birgit Brandau, München: dtv 2015. Page no. 147.

[15] जैसे क 'Rostock Lichtenhagen Riots' (1992). इस घटना के वषय में यहाँ पढ़ा जा सकता है: https://www.dw.com/en/25-years-after-rostock-lichtenhagen-dont-dwell-on-the-pastlearn-from-it/a-40155429 https://www.dw.com/en/rostock-riots-revealed-the-dark-side-of-humanity/a-18673369 (10/05/2025)

[16] इसकी चर्चा नेसबाउम वस्तार से अपनी इस कताब में करती हैं: Martha C. Nussbaum: *Hiding from Humanity. Disgust, Shame and the Law,* Princeton, New Jersey: Princeton University Press 2004.

"पानवित्ज़ लम्बा, पतला और 'ब्लॉन्ड' (blond[17]) है. उसके पास आँखें, बाल और नाक है, जो हर जर्मन को होना चाहिए. और वह भयानक तरह से एक बड़े से मेज़ के पीछे लगी कुर्सी पर आसीन है. मैं, कैदी नंबर 174517 उसके काम करने के कमरे में खड़ा हूँ, जो कमरा एक सच मुच का ऑफिस है; चमकता, साफ़ और करीने से सजा हुआ. मुझे महसूस होता है कि मैं कुछ छु दूंगा, तो उसपर एक गन्दा दाग लग जायेगा. जब उसने लिखना बंद कर दिया उसने अपनी नज़रें उठाई और मुझे देखा. मुझे उससे फिर से मिलने की इच्छा है, किसी बदले की भावना से नहीं, बल्कि मानव की रूह के प्रति अपनी व्यक्तिगत उत्सुकता के चलते. क्यूंकि दो मानवों के बीच ऐसी नज़र का कभी आदान प्रदान नहीं हो सकता है. और अगर मुझे पता होता कि उस नज़र की प्रकृति को कैसे पूरी तरह बताया जा सकता है, जो अक्वेरियम के पारदर्शी शीशे से दो अलग अलग दुनिया में रहने वाले दो जीवों के बीच आदान प्रदान की गयी नज़र है, तो मैं उसके माध्यम से 'ड्रीटे राइख' ('Third Reich') के पागलपन को भी बता पाता"[18].

प्रिमो लेवी यहाँ डॉक्टर पानवित्ज़ के शारीरिक गठन, हाव-भाव को विस्तार से लिखते हैं और इस प्रक्रिया में पानवित्ज़ का वैयक्तिककरण होता है. लेकिन दुसरे ही वाक्य में लेवी अपने लिए "कैदी न. 174517" लिखते हैं, जो इस बात की तरफ इशारा करता है कि किस तरह नाज़ी कांसेंट्रेशन कैंप में लेवी जैसे नागरिकों को नंबर देकर उनसे उनके नागरिक अधिकारों के साथ साथ वैयक्तिक अधिकार भी छीन लिए जाते थे. लिखने की इस साहित्यिक रणनीति के द्वारा पानवित्ज़ और लेवी के बीच के पॉवर डायनामिक्स का भी पता चलता है; कौन यहाँ उत्पीडित और कौन उत्पीड़न करने वाला है. लेवी खुद को और पानवित्ज़ को एक दुसरे से परस्पर तुलना करते हुए लिखते हैं, कि कैसे पानवित्ज़ का साफ़-सुथरा ऑफिस उन्हें अपने मैले होने का एहसास दिलाता है. पानवित्ज़ के सामने खड़े लेवी को उस नज़र में उत्सुकता होती है जिस नज़र से पानवित्ज़ उन्हें अगले पल में देखता है. प्रिमो लेवी द्वारा व्याखा किये गए डॉक्टर पानवित्ज़ के इस नज़र अथवा नज़रिए को "पानवित्ज़-ब्लिक" ("Pannwitz-Blick") कहा गया. जर्मन भाषा के शब्द 'Blick' का अर्थ होता है 'नज़रिया. टिल बास्टियन इस नज़रिए यानि "पानवित्ज़-ब्लिक" की व्याखा करते हुए लिखते है: "एक ऐसी नज़र, जो किसी मानव को कचड़े में बदलने की ताक़त रखता है."[19] "पानवित्ज़-ब्लिक" नफरत के ऑब्जेक्ट के मनोविज्ञान पर चोट करता है और उसके अपने बारे में सकारात्मक अवधारणा को नकारात्मक अवधारणा में बदल देता है. प्रताड़ना के इस क्षण में ऑब्जेक्ट खुद को असहाय महसूस करता है. "पानवित्ज़-ब्लिक" उसे नीचा दिखाता है, उसके आत्म-सम्मान को छिन्न-भिन्न करता है और अंततः ऑब्जेक्ट के आत्मबल को पूरी तरह निरस्त कर देता है. यह एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक-युद्ध है जो नफरत के ऑब्जेक्ट से जीने और होने का हक और मनोबल छीनने का दुस्साहस रखता है. लेवी भावों की शब्दावली से चुनकर शब्द नहीं लाते हैं यहाँ, जैसा कि कुंदेरा की "The Joke" से लिए उदाहरण में "hatred" शब्द लिया गया है, और लोर्ड की आपबीती के उपरांकित अंश में भी भावों की शब्दावली से 'नफरत' शब्द का चयन किया गया है. पानवित्ज़ एक व्यक्ति का उपनाम है और इस बिशेष सन्दर्भ में 'नफरत' को नए शब्द के जरिये लेवी ने लिखा है. यहाँ "पानवित्ज़-ब्लिक" अथवा पानवित्ज़ का नज़रिया ही 'नफरत' है और यह नजरिया एक विशिष्ठ परिस्थिति, काल और सन्दर्भ में यहुदिओं के खिलाफ़ 'नफरत' को बयां करता है. नाजियों द्वारा मानवता के विरुद्ध किये गए अपराध को समझने के लिए "पानवित्ज़-

[17] नाज़ी तानाशाही के वक़्त अंग्रेजी और जर्मन भाषा के वशेषण "blond" का सन जैसे पीले बालों और गोरे रंग के लए इस्तेमाल होता था और "blond" शब्द के द्वारा नस्लीय श्रेष्टता जताया जाता था.

[18] जर्मन भाषा से हिंदी में मेरा अनुवाद. Primo Levi: *Ist das ein Mensch? Erinnerungen an Auschwitz [1947]*. Translated from Italian into German by Heinz Riedt, Frankfurt/M: Fischer 1979. Page no. 110.

[19] Till Bastian: *„Die Politik der Beschämung",* in: Pontzen, Alexandra und Heinz- Peter Preusser (Hrsg.): *Schuld und Scham*. Heidelberg. Universitätsverlag, 2008. Page no. 207.

ब्लिक" को समझने होगा, जिसमें किसी दुसरे मानव के लिए अथाह नफरत है. यह नफरत एक व्यक्ति प्रिमो लेवी के लिए नहीं है, बल्कि एक समुदाय के लिए है, जो भी उस समुदाय से वास्ता रखता है उसके लिए है.

ऑड्रे लौर्ड की आत्मकथा में वर्णित वह श्वेत महिला, लेवी के संस्मरण से पानवित्ज़: इन दोनों में एक समानता है कि ये अपने अपने काल, सन्दर्भ और परिस्थितियों में किसी न किसी समुदाय से 'नफरत' करते हैं। इन दोनों चरित्रों में एक और समानता है: अपनी नफ़रत को लेकर कोई 'पछतावा' का नहीं होना. 'पाश्चाताप' एक भाव है, जिसमे लोगों के मनोविज्ञान को सकारात्मक दिशा में बदल देने की ताकत होती है. खैर 'नफरत' को मिटाने के लिए नफरत करने वालों के अंदर के 'पाश्चाताप' का इंतज़ार करना एक उचित उपाय कभी नहीं हो सकता है. प्रिमो लेवी इसके खिलाफ कलम थाम लेते हैं तो और्दे लौर्ड अपनी लेखनी और एक्टिविज्म से ब्लैक मूवमेंट जैसे प्रगतिशील खेमे का प्रतिनिधित्व करती हैं.

कवि अवतार सिंह पाश दुनिया को इसी 'नफरत' के खिलाफ खड़े होने की मुहीम के बाबत लिखते हैं: "सबसे ख़तरनाक वो आंख होती है, जिसकी नज़र दुनिया को मोहब्बत से चूमना भूल जाती है." हमारे सामने विकल्प हमेशा खुले हुए हैं: "पानवित्ज़-ब्लिक" वाली 'नफरत की नज़र' से दुनिया को देखें या 'मुहब्बत वाली नज़र' से.

नोट: हालाँकि इस लेख के केंद्र में 'नफरत' का भाव है, लेकिन लेख के शुरुवात और अंत में 'नफरत' को जानबूझ कर नहीं रखा गया है. बल्कि सकारात्मक भाव 'ख़ुशी' से आगाज़ हुआ है और 'मुहब्बत' से कारवां गंतव्य तक पहुंचा है.

References:

Books:

- Audre Lorde: 'Eye to Eye: Black Women, Hatred, and Anger'. In: Lodre, Audre: *Sister Outside. Essays and Speeches*. New York: Random House 1984.
- Schnell, Rüdiger: *Haben Gefühle eine Geschichte? Aporien einer History of Emotions,* Bd. I. Göttingen: V & R Unipress 2015.
- Smith, Tiffany Watt: *Das Buch der Gefühle,* trans. from English by Birgit Brandau. München: dtv 2015.
- Ahmed, Sara: *The cultural politics of Emotion.* Edinburgh University Press: Edinburgh 2004.
- Baird, R. M and Rosenbaum, S.E.: 'Introduction', in: R.M. Baird and S.E. Rosenbaum (eds.): *Bigotry, Prejudice and Hatred: Definitions, Causes and Solutions*. Buffalo, New York: Prometheus Books 1992.
- Holbrook, D.: *The masks of Hate. The Problem of False Solutions in the Culture of an Acquisitive Society*. Oxford: Pergamon Press 1972.
- Kundera, Milan: *The Joke*. English Translation. USA: Harper Collins 1992.
- Levi, Primo: *Ist das ein Mensch? Erinnerungen an Auschwitz* (1947) translated from Italian by Heinz Riedt, Frankfurt/M: Fischer 1979.
- Nussbaum, Martha C.: *Hiding from Humanity. Disgust, Shame and the Law,* Princeton, New Jersey: Princeton University Press 2004.

Articles:

- Bastian, Till: 'Die Politik der Beschämung', in: Pontzen, Alexandra und Heinz- Peter Preusser (Hrsg.): *Schuld und Scham*. Heidelberg: Universitätsverlag 2008. Pages 207-214.
- Grafik, Robert: 'World Literature and Comparative Poetics: Cultural Equality, Relativism, or Incommensurability?', in: *World Literature Studies* (2013): 64-76.

Films:

- 2006 *The Pursuit of Happiness*, Director: Gabriele Muccino.

Online Sources:

- https://dict.hinkhoj.com/hindi-dictionary.php?word=disgust&ie=UTF-8 (10.05.2025)
- https://www.dw.com/en/25-years-after-rostock-lichtenhagen-dont-dwell-on-the-pastlearn-from-it/a-40155429 (10.05.2025)
- https://www.dw.com/en/rostock-riots-revealed-the-dark-side-of-humanity/a-18673369 (10.05.2025)

कामेंग ई-पत्रिका / KAMENG E-JOURNAL
ISSN: 3048-9040 (Online)
संस्करण I | अंक II | अक्टूबर 2025 – अप्रैल 2026 | अर्धवार्षिक पत्रिका
Edition I | Issue II | October 2025 – April 2026 | Half Yearly Journal

दुःख

डॉ. वंदना भारती
वरिष्ठ सहायक प्राध्यापक
पूर्णियां वि. पूर्णियां
बिहार

This is an open access article under the Copyright (c) 2025 कामेंग ई-पत्रिका

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-Share Alike 4.0 International License.

सहकर्मी समीक्षा जर्नल
Peer reviewed Journal

Page No.: 70

सिर्फ दुःख ही मधुमक्खी के
छत्ते में छिपा नहीं होता है
वहां सुख भी कुंडली मारे रहता है
जो गाहे– बगाहे आकर
डंक मार जाता है
और
मारे सुख के हम बौराए फिरते हैं
दर्द होने का भी अपना सुख होता है
दर्द भी सुख देता है
मां के नाल से जब दाई अलग करती है
शिशु को
दर्द में भी वह सुख और कहां
लेकिन कुछ दर्द माएं पीढ़ियों से
ढोती हुई
आती हैं
और जाने अंजाने सौंप देती हैं
अपनी अगली पीढ़ी को
यह दुःख
ज्यादा स्थाई होता है
आता है तो जाने का नाम ही नहीं लेता
कभी – कभी तो पीढ़ियां गुजर जाती है
एक – सा ही दुःख हर बार रहता है
किवाड़ में लगे घुन की तरह
धीरे – धीरे खोखला करता जाता है
ऊपर से ढांचा दिखता है लेकिन
अंदर से खोखला , भुरभुरा
स्त्रियां जीती हैं दुखों के उस पहाड़ तले
जो पीढ़ियों से उन्हें मिली हैं
उनके लिए कोई सुरंग ऐसा नहीं
जिसके दूसरे छोर पर उजाला हो !

कामेंग ई-पत्रिका / KAMENG E-JOURNAL
ISSN: 3048-9040 (Online)
संस्करण I | अंक II | अक्टूबर 2025 – अप्रैल 2026 | अर्धवार्षिक पत्रिका
Edition I | Issue II | October 2025 – April 2026 | Half Yearly Journal

हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंधों में भारतीय परंपरा, मूल्य और अध्यात्म का चित्रण

आतिश कुमार विश्वकर्मा[1]
[1]**शोधार्थी**
हिंदी विभाग
श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालडी, केरल
संपर्क- 8179307074, **atishkv**28**@gmail.com**

This is an open access article under the Copyright (c) 2025 कामेंग ई-पत्रिका

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-Share Alike 4.0 International License.

सहकर्मी समीक्षा जर्नल
Peer reviewed Journal

हजारी प्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध निबंधकार, आलोचक और विचारक थे। उनके निबंधों में भारतीय परंपरा, सांस्कृतिक मूल्यों और अध्यात्म का गहरा विश्लेषण मिलता है। वे परंपरा को केवल रूढ़ियों का संग्रह नहीं, बल्कि सतत प्रवाह मानते हैं जो आधुनिकता के साथ तालमेल बिठाती है। उनके निबंध भारतीय जीवन-मूल्यों को स्थापित और पुनर्परिभाषित करते हैं, जहां प्रेम, करुणा, अहिंसा, सहिष्णुता और सत्य जैसे मूल्य प्रमुखता से उभरते हैं। द्विवेदी जी की लेखनी में भारतीय अध्यात्म की झलक मिलती है, जो भक्ति आंदोलन, वेदांत, बौद्ध और जैन परंपराओं से प्रभावित है। वे अध्यात्म को केवल धार्मिक संकल्पनाओं तक सीमित नहीं रखते, बल्कि इसे जीवन की गहरी अनुभूति और चेतना के विस्तार के रूप में देखते हैं। उनके चिंतन की व्यापकता और आधुनिक संदर्भों में उनकी प्रासंगिकता स्पष्ट होती है। अतः हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंधों में भारतीय परंपरा, जीवन-मूल्यों और अध्यात्म के विभिन्न आयामों का गहन अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, जिससे उनके चिंतन की व्यापकता और आधुनिक संदर्भों में उनकी प्रासंगिकता स्पष्ट होती है।

मुख्य बिंदु : भारतीय परंपरा,भारतीय संस्कृति,मानवीय मूल्यों की अहमियत,मनुष्य जीवन का उद्देश्य, प्रकृति और मानव का संबंध

शोध प्रपत्र का उद्देश्य : शोध प्रपत्र का उद्देश्य भारतीय परंपरा, मूल्य और अध्यात्म के ऊपर एक ऐसे व्यक्तित्व के दृष्टिकोण से बात करनी है जो भारत को अच्छे से जानते थे, भारतीय साहित्य और खासकर हिंदी साहित्य को बखूबी जानते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी के लिखे निबंध हमें उन्हीं बातों से अवगत कराती है, जो हमें एक जिम्मेदार बने रहने की प्रेरणा देती है। सीधे तौर पर कहें तो द्विवेदी जी के निबंध भारतीय परंपरा, मूल्य, अध्यात्म, आदर्श, देश प्रेम आदि को पुनः स्थापित करता है।

	शोध प्रपत्र की प्रविधि : चयनित निबंधों का विवेचनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन। **शोध प्रपत्र की प्रासंगिकता :** वर्तमान समय में विस्मृत होती जा रही भारतीय परंपरा और संस्कृति को पुनः स्थापित करना है। निबंधकार ने अपना पूरा समय भारतीय संस्कृति के संरक्षण के लिए, लोगों को अपने साहित्य से जागरूक करते रहे हैं। यह शोध उनके चिंतन की गहराई को समझने में सहायक होगा। आज जहाँ समाज में पारंपरिक और आधुनिक विचारधाराओं के मध्य जो संघर्ष चल रहा है, उसे द्विवेदी जी के साहित्य से हमें गहराई से समझने में सहायता मिलेगी।
Page No.: 71-77	**बीज शब्द:** संस्कृति, परंपरा, अध्यात्म, मूल्य, नैतिकता, देशप्रेम, प्रकृति

परंपरा मानव द्वारा निर्मित होती है और मानव द्वारा ही खंडित होती है। समय के साथ–साथ आधुनिकता नए सिरे से पनपती है और परंपरा को चुनौती देती रहती है। परंतु क्या सभी परंपरा रूढ़िग्रस्त होती है? इस प्रश्न का उत्तर एक दृष्टिकोण से तो नहीं दिया जा सकता। कहना गलत नहीं होगा लेकिन भारतीय परंपराओं का संरक्षण ग्रामीण क्षेत्र में रह रहे जन–मानस ही कर रहे हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी एक ऐसे साहित्यकार हैं जिन्होंने हिंदी भाषा और साहित्य के माध्यम से भारत की भूमि को भारत के सभी कोनों से जोड़ा है। एक प्रतिष्ठित इतिहास लेखक के साथ-साथ उनकी ख्याति एक प्रतिष्ठित निबंधकार के रूप में भी है। द्विवेदी जी एक आलोचक और विचारक के रूप में भारतीय साहित्य में अपना बहुमूल्य योगदान दिया है। गौरतलब है कि आचार्य जी की रचनाओं में भारतीयता की समझ की अमिट छाप है। उनकी रचनाओं में भारतीय परंपरा, मूल्य और अध्यात्म का समावेश प्रलक्षित होता है। एक विचारक के रूप में अपने देश की सभ्यता एवं परंपराओं पर अपने विचार रखकर द्विवेदी जी ने पाठकों की भीतर अपने देश की संस्कृति के प्रति श्रद्धा भाव और प्रेम को जगाया है, और कोई इस बात की अहमियत को नाकार नहीं सकता। द्विवेदी जी के निबंध भारतीय विचारधारा और जीवनदृष्टि को समझने का एक सुलभ साधन है। आचार्य जी के निबंध परंपरा और आधुनिकता के सामंजस्य को भी जोड़े रखा है। द्विवेदी जी के निबंध भारतीय समाज और संस्कृति, परंपरा, मूल्य, अध्यात्म, आदर्श, नैतिकता आदि को समृद्ध करती है। उनकी लेखनी में अध्यात्म की जो समझ है वह विचारणीय है। भारत में अध्यात्म का महत्व कितना है, उसकी समझ द्विवेदी जी के निबंधों से हमें पता चलता है। अध्यात्म का सम्बद्ध अब सिर्फ संस्कृत भाषा से तो नहीं है, इसीलिए भाषा के स्तर पर बिना किसी छद्म पांडित्य के, सरल भाषा में अध्यात्म की विशेषताओं पर विस्तार से चर्चा किया है। "विद्वान आलोचकों ने 'व्यक्तित्वाभिव्यंजन', 'कल्पना-प्रवणता','पांडित्य', 'फक्कड़पन', 'परम्परा-आधुनिकता संवाद', 'कोमलकांत पदावली', 'वैविध्यपूर्ण जीवन्त कथन शैली' आदि ललित निबंध की जिन विशेषताओं को रेखांकित किया है, उनके स्रोत आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के ललित निबंध ही जान पड़ते हैं।"1

कवियों के बदलते स्वरूप के सन्दर्भ में द्विवेदी जी लिखते हैं कि "आज का कवि भी यह स्वीकार करने में संकोच करेगा कि वह धन के लिए यश के लिए व्यवहार सिखाने के लिए लिख रहा है और पाठक भी उससे इन बातों

की आशा नहीं करता। छापे की मशीन ने इन विषयों के लिए अनेक अन्य शास्त्रों को सुलभ कर दिया है। इस मशीन ने जो पाठकों को भाभावेश पर से धकेल कर बुद्धिप्रवाह में फेंक दिया है, वह मामूली बात नहीं है।"2 कवि का कर्तव्य ही यही है कि वह मनोरंजन से अधिक समाज सुधार की प्रेरणा जनमानस तक पहुंचाए।

भारतीय समाज में अध्यात्म का उद्देश्य ही है 'मैं कौन हूँ?', 'सत्य क्या है?', 'मानव जीवन का उद्देश्य क्या है?' आदि प्रश्नों के उत्तर की खोज करना। अध्यात्म हमें करुणा, प्रेम, सत्य और अहिंसा जैसे मूल्यों को अपनाने की प्रेरणा देता है। वहीं परंपरा हमें अपने समाज की विरासत को संरक्षित रखने और पीढ़ी दर पीढ़ी ज्ञान, अनुभव और नैतिक मूल्यों को संचारित करते रहने की सीख देता है। सदाचारी और नैतिक कर्म से युक्त मानव बने रहना और सही गलत का भेद समझना यही तो मानव मूल्य है। भारतीय संस्कृति का आधार ही है, समाज में शांति, न्याय और सद्भाव बनाये रखना। चयनित निबंधों के माध्यम से हिंदी साहित्य में भारतीय परंपरा, मूल्य और अध्यात्म का प्रतिबिम्ब किस प्रकार प्रलक्षित होता है, उसका विश्लेषण करेंगे।

'अशोक के फूल' निबंध में मानवीय मूल्य की बात कही गई है। किस प्रकार समय के साथ-साथ मानवीय मूल्य नष्ट हो रहे हैं, इस निबंध में प्रलक्षित होता है। अशोक के फूल "भारतीय साहित्य में, और इसलिए जीवन में भी, इस पुष्प का प्रवेश और निर्गम दोनों ही विचित्र नाटकीय व्यापार है।"3 तात्पर्य यह कि कालिदास ने संस्कृत के ग्रंथों में अशोक के फूल को शोभा और सौकुमार्य का भार बनाया। अशोक का फूल प्रेम, सौंदर्य और आनंद का प्रतीक था। सिर्फ एक पुष्प ना होकर भारतीय परंपरा, वह भी प्राचीन काल से जुड़ा हुआ था। अशोक का फूल भारतीय संवेदना और सांस्कृतिक का प्रतीक है। परंतु विदेशी आक्रांताओं के आने से अशोक के फूल की तरह ही भारतीय मूल्य और सांस्कृतिक मूल्य में परिवर्तन आने लगा। अशोक के फूल का प्रवेश और निर्गम नाटकीय व्यापार स्वतः नहीं हुई। बल्कि एक प्रतीकात्मक और नाटकीय ढंग से हुआ। जिस प्रकार बुद्ध और विक्रमादित्य को याद किया जाता है, उसी प्रकार अशोक के फूल को याद किया जाता है। "अशोक किसी कुशल अभिनेता के समान झम से रंगमंच पर आता है और दर्शकों को अभिभूत करके खप–से निकल जाता है। ऐसा क्यों?"4 ऐसा इसलिए कि समय के साथ कितना ही प्रिय वस्तु क्यों ना हो, सभ्य परंपरा हो, सुसंस्कृति हो, नैतिक मूल्य हो वह बदल जाता है। उसकी जगह कोई और संस्कृति या सभ्यता अपना स्थान ले लेती है। "ईसवी सन के आरंभ के आसपास अशोक का शानदार पुष्प भारतीय धर्म, साहित्य और शल्प में अद्‌भुत महिमा के साथ आया था।"5 आज की स्थिति ऐसी है कि अशोक के फूल को भुला दिया गया है, क्योंकि यह समाज भुलक्कड़ है। और भुलक्कड़पन के अखाड़े में भारतीय मूल्यों को धीरे-धीरे भुला दिया जा रहा है। किसी भी मूल्य को मनुष्य की प्रवृति ही नष्ट करती है। परंतु कहीं–न–कहीं वह मूल्य रहता ही है, भले ही वह मनुष्यों में विद्यमान न रहे।

'शिरीष के फूल' शिरीष का पेड़ बड़े और छायादार होते हैं। शिरीष के फूल, आंधी–तूफान, गर्मी–बरसात सभी मौसम में डंटकर पेड़ पर टिका रहता है। निबंधकार यह संकेत करते हैं कि आज के समय में लोग क्षण भर में बिखर जाते हैं। वह अद्‌भुत अवधूत शिरीष के फूल जैसा कोमल और कठोर जैसे गुण कहां विलुप्त होते जा रहे हैं? "शिरीष जेठ के जलती धूप में भी नीचे से ऊपर तक फूलों से लद गया था। कम फूल इस प्रकार की गर्मी में फूल सकने की हिम्मत करते हैं।"6 "कर्णिकार और आरग्यवध (अमलतास) पंद्रह–बीस दिन के लिए फूलता है, वसंत ऋतु के पलाश की भांति।"7 शिरीष का फूल वायुमंडल से अपना रस खींचता है। शिरीष के पेड़ की डाल अपेक्षा से तनिक ज्यादा

कमजोर होती है, परंतु उसमें झूला लगाकर महिलाएं झूला झूल सकती हैं। यानी शिरीष के पेड़ में वह ताकत है कि वह कमजोर होकर भी छांव दे सकता है, उसमें झूला झूला जा सकता है। इसमें वही भारतीय मूल्य की बातें कही गई कि, कमजोर होकर भी व्यक्ति अपनी पूरी निष्ठा से किसी दूसरे का भार सह सकता है। उसे सुख और आनंद प्रदान कर सकता है। "जब उमस से प्राण उबलता रहता है और लू से हृदय सूखता रहता है, एकमात्र शिरीष कालजयी अवधूत की भांति जीवन की अज्ञेयता का मंत्रप्रचार करता रहता है।"8 परंतु शिरीष के फूल यह प्रेरणा देता है कि अपनी पूरी लगन से अपनी जगह पर अद्‌भुत अवधूत की तरह डंटे रहना चाहिए, जबतक टूट कर बिखर ना जाओ। जिस प्रकार नये फल–फूल निकल आने पर भी शिरीष का फूल अपनी जगह पर डंटा रहता है। और मनुष्य को भी दुख हो या सुख हो उससे विचलित नहीं होना चाहिए। हार तो बिल्कुल भी नहीं मानना चाहिए।

'कुटज' कुटज का परिचय संस्कृत साहित्य में बड़ी सहजता और आत्मीयता से ली गई है। परंतु कवियों द्वारा तिरस्कृत है। कुटज का स्वभाव ही है विपरीत परिस्थितियों में भी डंट कर खड़े रहना। कुटज के स्वभाव को आचार्य जी ने मानवीय मूल्य के तहत मनुष्य को "गाढ़े का साथी"9 होना कहा है। यानी एक ऐसा मित्र होना, जो सिर्फ सुख में हीं नहीं संघर्ष और दुख में भी साथ निभाए। जिस प्रकार कुटज प्रतिकूल वातावरण में भी फलते-फूलते रहता है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य को चाहिए कि वह कुटज की भांति अपने व्यक्तित्व को ना छोड़े। प्रतिकूल परिस्थिति में अपने स्वभाव को कुस्वाभव में ना बदले। जिस प्रकार रहीम ने किया–

"वे रहीम अब बिरछ कंहें, जिनकर छांह गंभीर;

बागन बिच–बिच देखियत, सेंहुड़ कुटज करीर।"10

हालांकि रहीम स्वभाव के ऐसे नहीं थे, पर कुछ ऐसी परिस्थिति आन पड़ी होगी। जिसके कारण उन्होंने कुटज को एक चपत लगा दी। आगे निबंधकार लिखते हैं कि "सुख पहुंचाने का अभिमान यदि गलत है, तो दुख पहुंचाने का अभिमान तो नितरां गलत है।"11 इस जगत में सब कुछ स्वार्थ ही है। प्रेम, परोपकार सब मतलब की चीजें हैं। अध्यात्म इन्हीं चीजों से हमें परे ले जाता है, और यह बात लगभग पूरब–पश्चिम के आध्यात्मिक चिंतकों ने भी माना है। निबंधकार के आनंद की प्राप्ति के संबंध में बताया है कि "अपने में सब और सबमें आप–इस प्रकार की एक समष्टि–बुद्धि जब तक नहीं आती तब तक पूर्ण सुख का आनंद भी नहीं मिलता।"12 कुटज की भांति हीं मनुष्य को जीना आना चाहिए। निस्वार्थ के साथ। किसी की चापलूसी कर अपनी वासना की पूर्ति करने से बचना चाहिए। यही अध्यात्म है। मत मानो हार। प्रिय–अप्रिया के भेद किए बिना निरंतर आगे बढ़ते चलो। कुटज होना यानी वैरागी होना है।

'आत्मदान का संदेशवाहक : वसंत' वसंत ऋतु उत्सव का महीना होता है। "सरस्वती पूजा यानी वसंत पंचमी, होली, मदनदेव की पूजा, कामदेवायन–यात्रा, आम्रतरु और माधविलता के विवाह, अभ्यूष–खादनिका (भुने हुऐ कच्चे गेहूं की पिकनिक), नवाम्र खादनिका, आदि के रूप में समूचा वसंतकाल नाच–गान और काव्यालाप से मुखर हो उठता था।"13 वसंत सिर्फ एक ऋतु ही नहीं बल्कि एक मनोभाव भी है। भारतीय परंपरा में इस ऋतु का अपना एक वैशिष्ट्य स्थान है। वसंत दुख से सुख की ओर इंगित करने वाला ऋतु है। जिस प्रकार पतझड़ के बाद वसंत ऋतु का आना आनंद और उल्लास की रीत है ठीक उसी प्रकार वसंत मनुष्य के अंदर दुख के बाद सुख की परंपरा को प्रदर्शित करता है। जीवन की सार्थकता आत्मज्ञान में ही है। यानी जीवन अपने से कहीं अधिक दूसरों के लिए समर्पित होना चाहिए। और ऋतुराज वसंत यही सीख हमें देने आता है।

'मेरी जन्मभूमि' निबंध में निबंधकार ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है कि "इतिहास का साहित्य कुछ बड़े-बड़े व्यक्तियों के उद्भव और विलय के लेखे–जोखे का नाम नहीं है। वह जीवन—मनुष्य के धारावाहिक जीवन—के सारभूत रस का प्रभाव है।"14 यानी जब भी गांव की परंपराओं की बात कही जाएगी उसमें जो मुख्य होकर भी साहित्यकारों और इतिहासकारों द्वारा गौण मान लिए गए हैं उनकी विशेषता फिर भी कम नहीं होगी। वहां की भूमि उनके बलिदान, शौर्य और कर्तव्यों को कभी नहीं भूल पायेगा बशर्ते उस पद्धति का प्रयोग पीढ़ी दर पीढ़ी हम करते रहें।

'भारत में द्यूतक्रीड़ा' "पाणिनि के समय पांच पासों का खेल था जिन्हें कृत, त्रेता, द्वापर, कलि और अक्षराज कहा गया है।"15 ऐसी मान्यता है की दिवाली के दिन जुआ खेलना चाहिए, इसमें कोई पाप नहीं है। परंतु एक धार्मिक पर्व को जुए से जोड़ना, वास्तव में ऐसा कभी था? यह सिर्फ स्वार्थी जनों की देन है। धर्म का काम तो रक्षा करना है, और कानून तो इसे निषिद्ध करार दे दिया। परंतु सरकार इसे खुलेआम प्रोत्साहित करती है। क्योंकि इससे उन्हें भी लाभ होता है। महाभारत काल में हुई द्यूतक्रीड़ा किसी से नहीं छुपी है। घर–बार, धन–दौलत सब दांव पर लगा देते हैं। यहां तक की एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को भी दांव पर लगा देता है। इसमें मानव मूल्य क्षीण हो रहा है। निबंधकार जुए की मानसिकता के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि "इतना जानता हूं कि उसने सूक्ष्म रूप धारण किया है और पूरे जन–जीवन पर छा गयी है। आधुनिक जीवन ही जुआ बन गया है। आप चाहें या न चाहें, जुए के चक्कर में आ ही जाएंगे।"16

'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' इस निबंध में द्विवेदी जी लिखते हैं कि "नाखूनों का बढ़ना मनुष्य की उसे अंध सहजात वृत्ति का परिणाम है, जो उसके जीवन में सफलता ले आना चाहती है, उसको काट देना उसे स्व–निर्धारित, आत्म–बंधन का फल है, जो उसे चरितार्थ की ओर ले जाती है।"17 भारतीय चित्त जो आज भी 'अनधीनता' के रूप में न सोचकर 'स्वाधीनता' के रूप में सोचता है, वह हमारे दीर्घकालीन संस्कारों का फल है। स्वाधीनता, स्वतंत्रता, स्वराज में 'स्वा' ही है। "हमारी परंपरा महिमामयी, उत्तराधिकार विपुल और संस्कार उज्जवल है।"18 लेकिन हम ज्यादातर इसके विपरीत ही सोचते हैं। नाखून का बढ़ना यानी मनुष्य में पशुता बढ़ना जिस प्रकार नाखून की भांति देश हथियार बढ़ा रहा है, उसे समय रहते काटना ही होगा वरना प्रेम, त्याग, निस्वार्थ सेवा, परोपकार आदि सब धीरे-धीरे विलुप्त होते जाएंगे। और जब भी कोई इन सब चीजों की बातें करेगा उसका अंजाम बुरा ही होगा।

'व्योमकेश शास्त्री उर्फ हजारी प्रसाद द्विवेदी' इस निबंध में द्विवेदी जी के साथ घटी एक घटना का उल्लेख है जिसमें वह पंचांग संबंधित बातों को एक भरी सभा में जाकर खाने से कतरा रहे थे। उन्हें लगा कि यह उनके एक गुरु पंडित रामयत्न ओझाजी उन्हें डांट देंगे परंतु हुआ इसके विपरीत ही। उनके गुरु ने पत्र लिखकर कहा (जब द्विवेदी जी वहां नहीं गए) "तू इंदौर क्यों नहीं गया? मैं तो उसे दिन अपनी विद्या सफल मानता जिस दिन तुझे निर्णायक की गद्दी पर बैठा देखता।"19 मानवीय मूल्य और अध्यात्म कहता है सामने अपना कोई भी क्यों न हो अगर बात सत्य है और उसे रखना एक जिम्मेदारी बन जाती है तो, डरना नहीं चाहिए, किसी से भी। चाहे स्वयं के गुरु ही विपक्ष में क्यों न हों। महाभारत का युद्ध इसका एक उदाहरण है।

'परंपरा और आधुनिकता' इस निबंध में द्विवेदी जी परंपरा और आधुनिकता के बीच हो रहे संघर्ष को सूक्ष्म दृष्टि से समझाते हुए बताते हैं कि "परंपरा का शब्दार्थ है, एक का दूसरे को, दूसरे का तीसरे को दिया जाने वाला काम। वह अतीत का समानार्थक नहीं है। 'परंपरा', जीवंत प्रक्रिया है जो अपने परिवेश के संग्रह–त्याग की

आवश्यकताओं के अनुरूप निरंतर क्रियाशील रहती है।"20 हमें अपने परंपराओं से हू–ब–हू चीजें प्राप्त नहीं होती। वस्तुतः उसमें भी बदलाव होता है, तब वह हमें प्राप्त होता है। काट–छांट और जोड़कर परंपरा अतीत से मिलती है। यह एक प्राकृतिक और स्वाभाविक प्रक्रिया है।

वास्तव में समाज यह बोलकर द्वंद्व पैदा किया जाता है कि परंपरा और आधुनिकता एक दूसरे के विरोधी हैं, परंतु वास्तविकता यह है कि ये दोनों आपस के विरोधी नहीं बल्कि आपस के पूरक हैं। परंपराओं की राह पर चलकर ही आधुनिक हुआ जा सकेगा। और जो आज आधुनिक है, कल परंपरा बन जाएगी।

निष्कर्ष

भारतीय संस्कृति, परंपरा, अध्यात्म, सादगी, सत्य, ईमानदारी, कर्म आदि पर द्विवेदी जी अपने निबंधों के माध्यम से बल देते आए हैं। ये निबंध आधुनिक मोहपाश में खोती पहचान को पुनः स्थापित करने का आधार बन सकते हैं। वर्तमान युग डिजिटल क्रांति का युग है। दिन-प्रतिदिन नए-नए अविष्कार और खोज मनुष्य के रोजमर्रा के जीवन को प्रभावित कर रहा है। आज जब डिजिटल उपभोक्तावाद और जलवायु संकट हमें आत्म-विस्मृति की ओर धकेल रहे हैं, उनके विचार विश्लेषणात्मक लेंस से प्रसांगिक हो उठते हैं| सादगी स्थायी जीवन शैली या सतत जीवन का मूल है, जबकि अध्यात्म माइंडफुलनेस और मानसिक स्वास्थ्य का वैज्ञानिक समर्थन । भौतिक विरोधी अतिवाद से हटकर एक संतुलन बनाने की कोशिश की जानी चाहिए, जहाँ आधुनिक जीवन शैली हो । समाज परिवर्तनशील रहा है, इसीलिए जरूरी यह भी है कि रूढ़ हो चुकी बातों और कार्यों को पीछे छोड़ देना ही प्रगतिशील मनुष्य होना है।

सन्दर्भ सूची

1. अमिताभ, वेदप्रकाश. *समकालीन हिंदी साहित्य : संवेदना और विमर्श*. कानपुर: अमन प्रकाशन, 2012. 130. Print.
2. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. *विचार प्रवाह*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1994. 113. Print.
3. द्विवेदी, मुकुन्द, संपा. *हजारी प्रसाद ग्रंथावली-9*. 4th ed. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2013. 19. Print.
4. द्विवेदी. *हजारी प्रसाद ग्रंथावली-9*. 20. Print.
5. द्विवेदी. *हजारी प्रसाद ग्रंथावली-9*. 20. Print.
6. द्विवेदी. *हजारी प्रसाद ग्रंथावली-9*. 25. Print.
7. द्विवेदी. *हजारी प्रसाद ग्रंथावली-9*. 25. Print.
8. द्विवेदी. *हजारी प्रसाद ग्रंथावली-9*. 26. Print.
9. द्विवेदी. *हजारी प्रसाद ग्रंथावली-9*. 30. Print.
10. द्विवेदी. *हजारी प्रसाद ग्रंथावली-9*. 31. Print.
11. द्विवेदी. *हजारी प्रसाद ग्रंथावली-9*. 34. Print.
12. द्विवेदी. *हजारी प्रसाद ग्रंथावली-9*. 33. Print.
13. द्विवेदी. *हजारी प्रसाद ग्रंथावली-9*. 52. Print.
14. द्विवेदी. *हजारी प्रसाद ग्रंथावली-9*. 98. Print.

15. द्विवेदी. *हजारी प्रसाद ग्रंथावली-9*. 89. Print.
16. द्विवेदी. *हजारी प्रसाद ग्रंथावली-9*. 89. Print.
17. द्विवेदी. *हजारी प्रसाद ग्रंथावली-9*. 110. Print.
18. द्विवेदी. *हजारी प्रसाद ग्रंथावली-9*. 108. Print.
19. द्विवेदी. *हजारी प्रसाद ग्रंथावली-9*. 117. Print.
20. द्विवेदी. *हजारी प्रसाद ग्रंथावली-9*. 358. Print.

सहायक ग्रंथ सूची

1. पांडे, गोविन्द चन्द्र. *भारतीय परंपरा के मूल स्वर*. 3rd ed. नई दिल्ली: National Publishing House, 1993. Print.
2. बाबुराम. *हिंदी निबंध साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2002. Print.
3. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. *भाषा साहित्य और देश*. 4th ed. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ, 2009. Print.